अलङ्कार दर्पण

साहित्य दर्पण

दशम परिच्छेद

एवं

छन्दो मञ्जरी

डा० जनार्दन गंगाधर रटाटे

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

अलङ्कार-दर्पण

साहित्य-दर्पण दशम परिच्छेदानुसार

तथा

छन्दोमञ्जरी

गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

के

पाठ्यक्रमानुसार

व्याख्याकार

डॉ० जनार्दन गङ्गाधर रटाटे

प्रवक्ता
संस्कृत-विभाग,
सांख्य महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रथम संस्क

मूल्य

प्रकाशक : विश्वविद्यालय ... सी

मुद्रक : शीला प्रिण्टर्स, लहरतारा, वाराणसी

अनुक्रमणिका

खण्ड २

छन्दो मञ्जरी

●

॥ श्रीः ॥

प्राक्कथन

बी० ए० के छात्रों के लिए यह 'अलङ्कार-दर्पण' व्याख्यासहित पुस्तक प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

इसमें बी० ए० कक्षा में निर्धारित अलङ्कारों के लक्षण, सरल व्याख्या तथा आवश्यक टिप्पणी दी गई है, जिसकी सहायता से छात्र परीक्षा में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

छात्रों को प्रश्नों के अनुसार उत्तर लिखना चाहिए। यदि अलङ्कारों का केवल लक्षण और उदाहरण पूछा जाय, तो मूल संस्कृत लक्षण लिखकर उसकी व्याख्या लिखनी चाहिए, और मूल संस्कृत उदाहरण देना चाहिए।

यदि उदाहरण दिया गया हो, और उसमें कौन अलङ्कार है, बतलाने के लिए कहा जाय, तो अलङ्कार का लक्षण लिखकर उक्त उदाहरण में उसका समन्वय कर दिखाना चाहिए।

यदि दो अलङ्कारों में भेद पूछा जाय, तो पहले दोनों अलङ्कारों का मूल संस्कृत लक्षण लिखकर दोनों का उदाहरण लिखना चाहिए और बतलाना चाहिए कि दोनों उदाहरणों में से क्यों एक उदाहरण दूसरे अलङ्कार का उदाहरण नहीं हो सकता। इसी प्रकार क्यों दूसरा उदाहरण पहले अलङ्कार का उदाहरण नहीं हो सकता।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक छात्रों की परीक्षोपयोगी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें सफल बनाने में सहायक होगी।

—व्याख्याकार

भूमिका

संस्कृत-काव्य-जगत् में अलङ्कारों का अद्वितीय महत्त्व है। इसीलिए, अलङ्कारों के निरूपक शास्त्र को राजशेखर ने वेद का अङ्ग स्वीकार किया है।

इस शास्त्र का नाम 'अलङ्कार-शास्त्र' अत्यन्त प्राचीन है। भामह ने अपने प्रथम अलङ्कार-ग्रन्थ का नाम 'काव्यालङ्कार' इसी दृष्टि से रखा है। भामह की यह कृति उस युग की रचना है, जब काव्य पर अलङ्कार की महत्ता सर्वाधिक थी। राजशेखर ने इस शास्त्र को 'साहित्यविद्या' की संज्ञा दी है।

भामह के अनुसार—

'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'

अर्थात् काव्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ का उचित समन्वय हो। 'साहित्य' शब्द का भाव इसमें सन्निहित है।

कुन्तक और भोजराज ने साहित्य की कल्पना के आधार पर ही अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण किया है। वात्स्यायन के कामसूत्र में साहित्यशास्त्र का नाम 'क्रियाकल्प' आया है। कामसूत्र में ६४ कलाओं के अन्तर्गत 'क्रियाकल्प' भी एक कला स्वीकार की गयी है, किन्तु अन्य नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं हुए हैं। वामन आदि आलंकारिकों ने अलंकार को अन्तः और वाह्य दोनों प्रकार के सौन्दर्य का वाचक वतलाया है।

उद्भव तथा विकास

राजशेखर ने इस शास्त्र की उत्पत्ति भगवान् शंकर से मानी है। शंकर ने इस शास्त्र का उपदेश ब्रह्मा को दिया और ब्रह्मा ने इसका उपदेश अन्य देवों और ऋषियों को दिया। पुराणों के अन्तर्गत अग्निपुराण में इसका विषय आया है। रुद्रदामन आदि के द्वितीय शती के शिला-लेख तत्कालीन अलंकार-शास्त्र के अभ्युदय के सूचक हैं। हरिषेण की समुद्रगुप्त-सम्बन्धी प्रशस्ति भी आलंकारिक है।

यास्क तथा गार्ग्य आदि प्राचीन आचार्यों ने उपमादि अलंकारों का प्रयोग एवं विवेचन विस्तृत रूप में किया है।

भामह, दण्डी, वामन की दृष्टि में अलंकार शब्द की अर्थसीमा में निखिल काव्य-तत्त्व समाविष्ट हैं। दण्डी के अनुसार काव्य के समस्त शोभादायक धर्मों को अलंकार कहा जाता है। वामन के विचार से सौन्दर्य ही अलंकार है। सौन्दर्य के सन्निवेश के कारण ही काव्य उपादेय है। वामन ने इस अवसर पर अलंकार का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। यहाँ भावप्रधान अलंकार शब्द ही अभिप्रेत है। करणप्रधान अलंकार शब्द उपमा आदि में प्रयोजित किया जाता है। आचार्य वामन गुणों को, काव्यशोभा को उत्पन्न करनेवाला धर्म मानकर, उनके अतिरेक का संवर्धन करनेवाले निमित्तों को अलंकार स्वीकारते हैं। भामह का अभिमत है कि वक्रता के उपपादक शब्दविन्यास अथवा अर्थ-संगुम्फन को अलंकार संज्ञा का अभिधायक मानना चाहिये। महिमभट्ट अलंकारों की अभिधात्मकता को स्वीकार करते हुए इन्हें भणिति की भंगिमा का रूप मानते हैं। राजानक कुन्तक के मत में प्रतिपाद्य की विशेष शैली ही अलंकार है; हाँ, शैली में वक्रता की स्थिति आवश्यक है। नमिसाध के अनुसार समस्त हृदयावर्जक अर्थप्रकार अलंकार की सीमा में सन्निहित हैं। ध्वनिकार आनन्दवर्धन और उनके प्रस्थान के प्रतिष्ठापक आचार्यों के द्वारा काव्य में रस की स्थापना के अनन्तर अलंकार-वैचित्र्य, विच्छित्ति अथवा चमत्कार का उपादान बन गया। उपरिनिर्दिष्ट कुन्तक के मतवाद को प्रायः प्रश्रय दिया गया है। आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त काव्य-शरीर की शोभा का संवर्धन करनेवाले अलंकारों को पृथक् सिद्ध स्वीकारते हैं। जिस प्रकार रमणी को विभूषित करनेवाले हार आदि भूषण उससे भिन्न हैं, उसी प्रकार काव्य में अलंकार भी बाह्य तत्त्व हैं। आचार्य मम्मट ने वैचित्र्य को अलंकार का मूल माना है। रूय्यक ने अनेक स्थलों पर कवि-प्रतिभा या विच्छित्ति की स्थिति में अलंकार स्वीकारने का निर्देश

किया है। अनुवर्ती आलंकारिकों ने विच्छित्ति, वैचित्र्य, चारुत्व, मनोज्ञत्व अथवा चमत्कार की आख्या से उपर्युक्त मतवाद को माना है।

आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि की स्थापना के अनन्तर यद्यपि प्रायः अलंकारों को अनादृति सहन करनी पड़ी है, तथापि सूक्ष्मेक्षण से यह सिद्ध हो जाता है कि काव्य में इनका भी कम महत्त्व नहीं है। भामह, दण्डी, वामन भेदक स्थिति को नहीं स्वीकारते। इनके अनुसार निखिल काव्य-सौन्दर्य अलंकार की सीमा में सन्निविष्ट हो जाता है।

आनन्दवर्धन की दृष्टि में यद्यपि अलंकार काव्य का शरीरमात्र है, वहिरंग है, परन्तु ये शरीरी भी हो सकते हैं। शरीरी से तात्पर्य आत्मा से है। अलंकार जहाँ वाच्य न रहकर व्यंजित होंगे, वहाँ वे आत्मरूप में अधिष्ठित होंगे, स्वयं अलंकार हो उठेंगे।

कहा भी गया है—

शरीरीकरणं येषां वाच्यत्वेन व्यवस्थितम्।
तेऽलङ्काराः परां छायां यान्ति ध्वन्यङ्गतां गताः॥

—ध्वन्या०, २।२८

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः॥

—ध्वन्या०, २।१६

अलंकार के स्वतन्त्र चिन्तन तथा विकास की दृष्टि से रुय्यक (बारहवीं शती) तक का समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके बाद यों तो अलंकारों की संख्या (१९वीं शती तक के प्रारम्भ तक) १९१ तक पहुँच गई। प्रायः सभी समीक्षक इस बात पर एकमत हैं कि इन नवीन अलंकारों का आविर्भाव केवल अपनी-अपनी अलंकार-प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए अधिक हुआ था; इन नवीन आविष्कारों में चमत्कार अधिक नहीं था। वस्तुतः रुय्यक के तुरन्त बाद से अलंकारों की संख्या बढ़ाने की होड़-सी लग गयी थी। ध्वनि के अनन्त

भेदापभेद की होड़ में संभवतः अलंकारवादी भी अपना भण्डार बढ़ाते चले जा रहे थे। रुय्यक के बाद शोभकर ने अलंकारों को बढ़ाने की प्रवृत्ति पैदा कर दी थी, उसी प्रकार दीक्षित से विमत पण्डितराज ने अलंकारों की बाढ़ को रोकना आरम्भ कर दिया था। अलंकार-शास्त्र के इतिहास की यह बड़ी आकर्षक कहानी है। इतिहास के एक मोड़ पर (जिसका समय १२वीं शती है) दो अलंकार-शास्त्रियों के परस्पर विरोध ने अलंकारों में बाढ़ पैदा की थी, तो दूसरे मोड़ पर (जिसका समय १८वीं शती है) उसने बाढ़ को रोकने का कार्य किया है। परस्पर विरोध की इस पुनरावृत्ति ने इतिहास में प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों ही कार्य किये।

भरत ने रूपकों की भाषा पर प्रकाश डालते हुए चार अलंकारों का उल्लेख किया है—उपमा, रूपक, दीपक, यमक। इन चारों में केवल एक यमक शब्दालंकार है, और शेष तीन अर्थालंकार हैं। इन अलंकारों के अतिरिक्त भरत ने काव्यवन्ध में ३६ लक्षणों के (जिन्हें वे १७वें अध्याय के अन्त में काव्य का विभूषण (काव्यभुषण) तथा भूषणसंमित कहते हैं) उपयोग की भी बात कही है। भरत के तीन लक्षण—हेतु, लेश तथा आशीः—भामह के समय तक अलंकार-प्रक्रिया में परिग्रहीत होने लगे थे। स्वयं भामह ने इनमें से प्रथम दो अलंकार मानने का स्पष्ट खण्डन किया है; किन्तु अन्तिम के सम्वन्ध में केवल इतना ही कहा है कि कुछ लोग आशीः को भी अलंकार मानते हैं। अतः संभव है कि भामह को भी अलंकार अभीष्ट रहा हो। दण्डी ने हेतु तथा लेश (सूक्ष्मनामक एक तीसरा अलंकार भी इसमें सम्मिलित है) अलंकारों को त्याज्य न मानकर वाणी का उत्तम भूषण बताया है। इस प्रकार भरत के जिन लक्षणों को अलंकार मानने में भामह हिचकते थे, उन्हींको दण्डी के समय तक अलंकार के रूप में सम्मानपूर्वक स्वीकृति हो गयी थी। दण्डी ने तो स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा भी की थी कि दूसरे शास्त्र (आगम) में जिन्हें सन्ध्यङ्ग, वृत्त्यङ्ग तथा लक्षण आदि के रूप में बताया गया है, वे उन्हें अलङ्कार के रूप में सर्वथा अभीष्ट हैं—

यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः॥

—काव्यादर्श, २।३६६

भरत के बाद भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में यमक (जिसके पाँच भेद—आदि यमक, मध्यान्त यमक, पादाभ्यास, आवली और समस्तपाद यमक—उन्होंने बताये हैं) के अतिरिक्त अनुप्रास नामक एक शब्दालङ्कार और बढ़ाया। इसके दो भेद भी उन्होंने दिये हैं। उन्होंने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है कि ग्राम्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास दूसरे आचार्य मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि भरत के बाद और भामह से पूर्व इन दो अनुप्रासों का विकास हो चुका था। भामह ने कदाचित् उन्हें एक सामान्य वर्ग अनुप्रास के अन्तर्गत रखकर इन दोनों को उसीका भेद बताने का कार्य किया है। भामह के अनुसार शब्दालङ्कार दो हैं—अनुप्रास तथा यमक।

भामह के अर्थालङ्कारों की संख्या ३६ है। भट्टि ने भी लगभग इतने ही अर्थालङ्कारों का स्पष्ट निर्देश किया है।

दण्डी ने काव्यादर्श के द्वितीय परिच्छेद में अलंकार का लक्षण प्रस्तुत करने तथा पूर्वाचार्यों द्वारा प्रदर्शित अलंकार-विकल्पों के बीज का प्रतिसंस्कार करने का उद्देश्य रखा है। यह स्पष्ट करने के बाद दण्डी ने ३५ अर्थालङ्कारों का परिगणन किया है।

दण्डी के अलङ्कारों में भामह के यथासंख्य, उपमारूपक, उपमेयोपमा, ससन्देह, अनन्वय तथा उत्प्रेक्षावयव, ये ६ अलंकार नहीं हैं। भामह द्वारा प्रत्याख्यात हेतु, सूक्ष्म तथा लेश के संग्रह के अतिरिक्त काव्यादर्श में आवृत्ति तथा क्रम के नाम से दो नवीन अलङ्कारों की उद्भावना भी है। दण्डी की एक उल्लेखनीय विशेषता अनेक अलङ्कारों के भेद का प्रस्ताव है। भामह अलङ्कार और उनके भेद बढ़ाने से दूर रहना चाहते थे, पर दण्डी ने अलङ्कार की संख्या को न सही, उनके भेदों की संख्या को बहुत अधिक बढ़ाया है। उनके

द्वारा प्रवर्तित अनेक अलंकार-भेद कालान्तर में या तो स्वतन्त्र अलङ्कार बन गये अथवा परवर्ती आचार्यों के भेदों में अन्तर्भूत हो गये हैं। अनेक भेद ऐसे भी हैं, जिनका बाद में समादर नहीं हुआ है।

दण्डी के बाद उद्भट ने अलङ्कारों की संख्या ४१ व्यवस्थित की है। उन्होंने कतिपय अलङ्कारों को लेकर उनका परिगणन ६ बार किया है। इन परिगणनों के आधार पर कुछ लोग इन्हें वर्ग में विभाजन मानते हैं। प्रत्येक परिगणन के अन्त में उद्भट ने नियमतः यह लिखा है कि दूसरे इन अलङ्कारों को मानते हैं।

उद्भट ने न केवल भामह-दण्डी के अनेक अलङ्कारों को और उनके भेदों को रूप प्रदान किया, अपितु पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास (वृत्त्यानुप्रास भी उद्भट द्वारा ही प्रतिपादित है, पर उन्होंने कदाचित् इसे स्वतन्त्र अलङ्कार नहीं माना था), काव्यलिंग, दृष्टान्त तथा संकर इन अलङ्कारों की उद्भावना भी की है। अनेक अलङ्कारों के भेदों की परिभाषा कर उन्हें केवल व्यवस्थित रूप ही उद्भट ने नहीं दिया है, अपितु उनके अपर भेदों की उद्भावना भी की है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय अलङ्कार (अकारादि क्रम से) अतिशयोक्ति, अनुप्रास, अप्रस्तुतप्रशंसा, उपमा, निदर्शना, लाटानुप्रास, विशेषोक्ति तथा व्यतिरेक हैं। वस्तुतः अलङ्कार-विकास की दृष्टि से उद्भट की सबसे बड़ी विशेषता अलङ्कार और उनके भेद को परिष्कृत रूप में परिभाषित करना है। उन्होंने भामह का प्रायेण अनुसरण किया। पर इनके यमक, उपमारूपक, उत्प्रेक्षावयव को तथा दण्डी के आवृत्ति, लेश तथा सूक्ष्म अलङ्कारों को स्वीकार नहीं किया है।

वामन ने कुल ३१ अलंकार माने हैं।

रुद्रट ने वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा चित्रालङ्कार को शब्दालङ्कार माना है तथा इनके अनेक भेदों का भी प्रतान किया है। रुद्रट सर्वप्रथम आलङ्कारिक हैं, जिन्होंने अलङ्कारों का वर्गीकरण किया। वह सदोष है या निर्दोष, यह दूसरी बात है। रुद्रट के बाद ध्वनिकाल के प्रवर्तक का युग प्रारम्भ हो

जाता है। रुय्यक से पूर्व भोज और मम्मट ये दो आलङ्कारिक और हैं, जिन्होंने अलङ्कारों के विकास में साक्षात् योग दिया था।

भोज द्वारा की गयी अलङ्कार-मीमांसा एक नयी परम्परा का प्रवर्तन करती है। इस नवीनता में अनेक प्राचीन परम्पराओं का समाहार भी है, और प्रातिस्विक उद्भावनाएँ भी हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण के द्वितीय परिच्छेद में उन्होंने २४ शब्दालङ्कारों का अनेक भेदोपभेद के साथ वर्णन किया है।

भोज के बाद अलङ्कार-मीमांसा के इतिहास में मम्मट-रुय्यक का युग आ जाता है। मम्मट ने काव्यप्रकाश के नवम उल्लास में ६ शब्दालङ्कार वक्रोक्ति, अनुप्रास, लाटानुप्रास, श्लेष, चित्र एवं पुनरुक्तवदाभास का तथा दशम में ६२ अर्थालङ्कारों का निरूपण किया है। इसके बाद रुय्यक ने अलङ्कारों के लक्षण—निरूपण, विकास, विभाग तथा वर्गीकरण में अपना अप्रतिम योगदान दिया है।

रुय्यक (१२वीं शती का मध्य) ने ६ शब्दालङ्कारों—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक, लाटानुप्रास, चित्र—का विवेचन किया है। वस्तुतः अनुप्रासों को एक मान लेने पर शब्दालङ्कारों की संख्या चार रह जाती है। स्वयं रुय्यक पौनरुक्त्य प्रकार में ५ अलङ्कार मानते हैं तथा चित्र के मिला देने पर इनकी संख्या ६ हो जाती है।

तदनन्तर वाग्भट का वाग्भटालङ्कार एवं हेमचन्द्र सूरि का काव्यानुशासन उपलब्ध होता है। वाग्भटालङ्कार के चतुर्थ परिच्छेद में ४ शब्दालङ्कार एवं ३५ अर्थालङ्कारों का उपन्यास किया है। हेमचन्द्र सूरि के काव्यानुशासन में ६ शब्दालङ्कार तथा २९ अर्थालङ्कारों का विवेचन है। इन दोनों ग्रन्थों में किसी नव्यता का परिदर्शन नहीं होता।

पीयूषवर्ष जयदेव के अलंकार-ग्रन्थ चन्द्रालोक के पंचम मयूख में ४ शब्दालङ्कारों तथा ८६ अर्थालङ्कारों का विवेचन किया गया है।

इनके अतिरिक्त जिन अन्य विद्वानों के ग्रन्थों में अलङ्कार-सम्बन्धी विवेचन उपलब्ध होता है, वे ये हैं—

एकावली ग्रन्थ के रचयिता विद्याधर (१२८५–१३२५ ई० का मध्य),
'प्रतापरुद्र यशोभूषण' के रचयिता विद्यानाथ (१४वीं शती),
साहित्यदर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ (१४वीं शती का पूर्वार्ध)
अलङ्कारशेखर के रचयिता केशवमित्र (१६वीं शती),
चित्रमीमांसा, कुवलयानन्द तथा वृत्तिवार्तिक के रचयिता अप्पय दीक्षित (१५४९ ई०–१६१३ ई० के मध्य),
रसगंगाधर के रचयिता पण्डित जगन्नाथ (१७वीं शती पूर्वार्ध) और
'अलङ्कार कौस्तुभ' के रचयिता विश्वेश्वर पण्डित (१८वीं शती का प्रथम चरण) ।

उक्त आलङ्कारिकों में आचार्य विश्वनाथ बी० ए० के छात्रों के लिए विशेष पठनीय होने से उनके बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

आचार्य विश्वनाथ

ये उत्कल के राजा के दरबार में नीति के पण्डित थे । सन्धि और विग्रह का निर्णय इन्हींके द्वारा किया जाता था । इनका समय १४वीं शती का पूर्वार्ध है, ऐसा पहले ही कहा जा चुका है । ये प्रतिष्ठित महापात्र कुल में उत्पन्न हुए थे । उस समय महापात्र एक आदरणीय पदवी होती थी । इनके पिता चन्द्रशेखर एक उत्कृष्ट कवि, विद्वान् और सान्धिविग्रहिक थे । इनके एक पूर्वज राघवानन्द भी महापात्रपदवीधारी तथा सान्धिविग्रहिक थे, ऐसा इनके ही ग्रन्थ से ज्ञात होता है ।

ग्रन्थ-रचना

इनका ग्रन्थ साहित्य-दर्पण एक अत्यन्त लोकप्रिय लक्षण-ग्रन्थ है । इसमें दस परिच्छेद हैं, जिनमें क्रमशः काव्य के लक्षण, शब्दवृत्ति-विचार, रसादि निरूपण, नाटकस्वरूप-विचार, दोष-विचार, गुण-विचार, रीति-निरूपण तथा अलङ्कार-विवेचन आदि विषय हैं । ये व्यञ्जनावादी हैं तथा इस विषय में इनके सिद्धान्त आचार्य अभिनवगुप्तपाद के मत के अनुरूप हैं ।

इनके द्वारा रचित ग्रन्थ का अलङ्कार भाग प्रकृतोपयोगी होने के कारण अब उस बारे में विवेचन किया जा रहा है—

शब्दपरिवर्तनासहिष्णु अलंकार शब्दालंकार है। दूसरे शब्दों में प्रमुखतः शब्दों पर आश्रित अलङ्कार शब्दालङ्कार कहलाता है।

अर्थपरिवर्तनासहिष्णु अलङ्कार अर्थालङ्कार है। अर्थात् प्रमुखतः अर्थ पर आश्रित अलङ्कार अर्थालङ्कार कहलाता है।

शब्द तथा अर्थ दोनों पर एक साथ आश्रित रहनेवाला अलङ्कार उभयालङ्कार कहलाता है।

कभी-कभी दो ऐसे अलङ्कार एक ही पद्य में आ जाते हैं, जो परस्पर अत्यधिक समानता धारण करते हैं; और उनमें से एक-दूसरे को पृथक् रूप से समझना अथवा स्पष्ट करना सामान्यतः कठिन होता है।

इसलिए ऐसे प्रमुख अलङ्कारों के भेद के बारे में विवेचन किया जा रहा है।

अलङ्कारों का परस्पर भेद

१. लाटानुप्रास और यमक में भेद

लाटानुप्रास में 'नयने तस्यैव नयने च' इत्यादि में निसर्ग से एकार्थक शब्दों में केवल तात्पर्य से अर्थ का भेद होता है; और यमक में सम्भव होने पर प्रकृत्यैव भिन्नार्थक किन्तु एक आकारवाले शब्दों का प्रयोग होता है,—यही इन दोनों में भेद है।

२. शब्दश्लेष और समासोक्ति एवं अप्रस्तुतप्रशंसा में भेद

शब्दश्लेष में दो प्रकार के ही अर्थों की अभिधावृत्ति से प्रतीति होती है; और समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसादि में दूसरे अर्थ की प्रतीति व्यञ्जनावृत्ति से होती है—यह इनमें भेद है।

३. रूपक तथा उत्प्रेक्षा में भेद

रूपक में कवि यह मानते हुए भी कि मुख चन्द्रमा नहीं है, उनके अतिसाम्य के कारण मुख पर चन्द्रमा का आरोप कर देता है। इस स्थिति में उसकी चित्तवृत्ति में अनिश्चितता नहीं पाई जाती। उत्प्रेक्षा में कवि की चित्तवृत्ति किसी एक निश्चय पर नहीं पहुँच पाती, यद्यपि उसका विशेष आकर्षण 'चन्द्रमा' के प्रति होता है। उत्प्रेक्षा भी एक प्रकार का संशय (सन्देह) ही है, पर इस संशयावस्था में दोनों पक्ष समान नहीं रहते, बल्कि उपमानपक्ष बलवान् होता है। इसीलिए उत्प्रेक्षा को 'उत्कटकोटिकः संशयः' कहा जाता है।

४. रूपक तथा सन्देह में भेद

रूपक में कवि की चित्तवृत्ति अनिश्चित नहीं रहती, जब कि सन्देह में वह अनेक पक्षों में दोलायित रहती है।

५. रूपक तथा स्मरण में भेद

दोनों सादृश्यमूलक अलंकार हैं। रूपक में एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाता है, जब कि स्मरण में सदृश वस्तु को देखकर उपमान की अथवा तत्सम्बद्ध वस्तु की भी स्मृति हो सकती है, किंतु रूपक में उपमेय ही आरोप विषय हो सकता है।

६. रूपक तथा अतिशयोक्ति में भेद

अतिशयोक्ति के प्रथम भेद (भेदे अभेदरूपा अतिशयोक्तिः) से रूपक में यह समानता है कि दोनों अभेदप्रधान अलंकार हैं। किंतु रूपक में तादूप्य पाया जाता है, जब कि अतिशयोक्ति में अध्यवसाय होता है, अर्थात् अतिशयोक्ति में

विषयी (चन्द्र) विषय (मुख) का निगरण कर लेता है। रूपक में गौणी सारोपा लक्षणा होती है, तो अतिशयोक्ति में गौणी साध्यवसाना लक्षणा।

७. रूपक तथा निदर्शना में भेद

रूपक तथा निदर्शना दोनों में यह समानता है कि यहाँ आरोप पाया जाता है, रूपक में विषय पर विषयी का ताद्रूप्यारोप होता है, जब कि निदर्शना में दो पदार्थों का परस्पर ऐक्यारोप पाया जाता है। कुछ (अप्पय दीक्षित आदि) आलंकारिकों के मत से निदर्शना तथा रूपक में यह भेद है कि निदर्शना में पदार्थों में बिंवप्रतिबिंवभाव होता है, जब कि रूपक में बिंवप्रतिबिंवभाव नहीं होता। किंतु यह मत मान्य नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ ने इस मत का खण्डन कर सिद्ध किया है कि रूपक में भी बिंवप्रतिबिंबभाव हो सकता है। पण्डितराज के मत से निदर्शना तथा रूपक में सबसे बड़ा भेद यह है कि रूपक में प्रकृताप्रकृत में श्रौत या शाब्द सामानाधिकरण्य पाया जाता है, जब कि निदर्शना में यह सामानाधिकरण्य शाब्द न होकर आर्थ ही होता है। इसीलिए उन स्थानों पर जहाँ यत्-तत् के प्रयोग के द्वारा एक वाक्य पर दूसरे वाक्य का श्रौत सामानाधिकरण्य पाया जाता है, पण्डितराज निदर्शना नहीं मानते, वे यहाँ वाक्यार्थ-रूपक जैसा भेद मानते हैं। मम्मट, दीक्षित आदि वहाँ भी निदर्शना ही मानते हैं।

८. उत्प्रेक्षा तथा सन्देह में भेद

दोनों संशयमूलक अलंकार हैं, जिनमें किसी एक पक्ष का पूर्ण निश्चय नहीं हो पाता। यह मुख है या चन्द्रमा है, इस तरह की अनिश्चितता दोनों में रहती है, किंतु भेद यह है कि सन्देह में दोनों पक्ष समान होते हैं, अतः चित्तवृत्ति को किसी एक पक्ष का मोह नहीं होता। उत्प्रेक्षा में चित्तवृत्ति को उपमानपक्ष का मोह रहता है, उपमान के प्रति उसका विशेष झुकाव होता है। इसीको 'मन्ये' आदि के द्वारा व्यक्त करते हैं।

९. उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति में भेद

दोनों अध्यवसायमूलक अलंकार हैं। अतिशयोक्ति में अध्यवसाय के सिद्ध

होने के कारण विषयी विषय का निगरण कर लेता है, अतः विषय का स्वशब्दतः उपादान नहीं होता। उत्प्रेक्षा में अध्यवसाय साध्य होने के कारण विषय का उपादान होता है। वस्तुतः उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा अतिशयोक्ति की वह मध्यवर्ती स्थिति है, जब संशय को छोड़ने के लिए चित्तवृत्ति धीरे-धीरे उपमान की ओर झुकने लगती है। जब वह पूरी तरह उपमानपक्ष की ओर झुक जाती है, तथा उत्प्रेक्षा या सन्देह बिल्कुल नहीं रहता तो अतिशयोक्ति हो जाती है। इस तरह उत्प्रेक्षा में किसी सीमा तक अनिश्चितता पाई जाती है, जब कि अतिशयोक्ति में उपमानत्व (चन्द्रत्व) का पूर्ण निश्चय होता है। इतना संकेत कर देना आवश्यक होगा कि दोनों अलंकारों में साधर्म्यकल्पना आहार्य होती है।

१०. स्मरण, सन्देह तथा भ्रान्तिमान् में भेद

१. तीनों सादृश्यमूलक अलङ्कार हैं। स्मरण भेदाभेदप्रधान अलङ्कार होने के कारण उपमा के वर्ग का अलङ्कार है, जब कि सन्देह एवं भ्रान्तिमान् अभेद-प्रधान अलङ्कार होने के कारण रूपकवर्ग के अलङ्कार हैं।

२. स्मरण अलङ्कार में किसी वस्तु को देखकर सदृश वस्तु का स्मरण हो आता है। अतः इसमें या तो उपमेय को देखकर उपमान का स्मरण हो आये। साथ ही स्मरण अलङ्कार में किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश वस्तु से सम्बद्ध वस्तु के स्मरण का भी समावेश होता है।

३. सन्देह अलङ्कार में एक ही प्रकृत पदार्थ में कविप्रतिभा के द्वारा अप्रकृत को संशयावस्था उत्पन्न की जाती है। यह संशय आहार्य या स्वारसिक किसी भी तरह का हो सकता है। अलङ्कार होने के लिए किसी भी सन्देह में चमत्कार होना आवश्यक है, अतः 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' सन्देहालङ्कार नहीं हो सकता। आलङ्कारिकों ने इसके तीन भेद माने हैं—शुद्ध, निश्चयगर्भ तथा निश्चयान्त।

४. भ्रान्तिमान् अलङ्कार में कविप्रतिभा के द्वारा प्रकृत में अप्रकृत का मिथ्या-ज्ञान होता है। यह ज्ञान सदा अनाहार्य या स्वारसिक होता है। सादृश्यमूलक भ्रान्ति होने पर ही यह अलङ्कार होता है। साथ ही अलङ्कार होने के लिए चमत्कार का

होना आवश्यक है, अतः शुक्ति में रजतभ्रान्ति को अलङ्कार नहीं माना जायगा।

११. अपह्नुति तथा व्याजोक्ति में भेद

दोनों अलङ्कारों में वास्तविकता का गोपन कर अवास्तविक वस्तु की स्थापना की जाती है। दोनों ही अलङ्कारों में वास्तविकता का निषेध (या गोपन) आहार्य ज्ञान पर आश्रित होता है। किन्तु प्रथम तो अपह्नुति सादृश्य-मूलक अलङ्कार है, व्याजोक्ति गूढार्थप्रतीतिमूलक अलङ्कार; दूसरे अपह्नुति में वक्ता प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत की स्थापना इसलिये करता है कि वह प्रकृत वस्तु का उत्कर्ष द्योतित करना चाहता हैं, जब कि व्याजोक्ति में वक्ता वास्तविक बात का गोपन कर उसीके समान लक्षणवाली अवास्तविक बात की स्थापना इसलिये करता है कि वह श्रोता से सच बात को छिपाकर उसे अज्ञान में रखना चाहता है।

१२. तुल्ययोगिता तथा दीपक में भेद

दीपक तथा तुल्ययोगिता दोनों गम्यौपम्यमूलक अलङ्कार हैं। दोनों में पदार्थों का एकधर्माभिसम्बन्ध पाया जाता है तथा धर्म का उल्लेख केवल एक ही बार किया जाता है। दोनों एकवाक्यगत अलङ्कार हैं। इन दोनों अलङ्कारों में भेद केवल इतना है कि तुल्ययोगिता में समस्त पदार्थ या तो प्रकृत होंगे या अप्रकृत, जब कि दीपक में कुछ पदार्थ प्रकृत होते हैं, कुछ अप्रकृत।

१३. प्रतिवस्तूपमा तथा दृष्टान्त में भेद

दोनों में दो स्वतन्त्र वाक्य होते हैं, एक में प्रकृत तथा दूसरे में अप्रकृत का निर्देश होता है, फिर भी उसका निर्देश भिन्न शब्दों में होता है, जब कि दृष्टान्त में दोनों वाक्यों में साधारण धर्म सर्वथा भिन्न-भिन्न होते हैं, यद्यपि उनमें स्वयं में समानता पाई जाती है; अर्थात् प्रतिवस्तूपमा में एक महत्त्वपूर्ण भेद यह भी है कि प्रतिवस्तूपमा में कवि विशेष जोर केवल दो पदार्थों के धर्म पर ही देता है, जब कि दृष्टान्त से वह धर्म तथा धर्मी दोनों के परस्पर सम्बन्ध पर जोर देता है।

१४. दृष्टान्त तथा अर्थान्तरन्यास में भेद

अर्थान्तरन्यास में भी दृष्टान्त तथा प्रतिवस्तूपमा की तरह परस्पर निरपेक्ष दो वाक्य होते हैं; किन्तु दृष्टान्त औपम्यमूलक अलङ्कार है, जब कि अर्थान्तरन्यास को कुछ आलङ्कारिक तर्कन्यायमूलक अलङ्कार मानते हैं। दृष्टान्त तथा प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों में परस्पर समर्थ्य समर्थकभाव होता हैं। दृष्टान्त में औपम्य की व्यञ्जना होने के कारण दोनों पदार्थ विशेष होते हैं, जब कि अर्थान्तरन्यास में एक पदार्थ सामान्य होता है, एक विशेष। दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्म में परस्पर बिंवप्रतिबिंवभाव पाया जाता है, जब कि अर्थान्तरन्यास में दोनों वाक्यों में परस्पर सामान्य-विशेषभाव होता है।

१५. दृष्टान्त तथा अप्रस्तुतप्रशंसा में भेद

दोनों अलङ्कारों में प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत पदार्थ का प्रयोग किया जाता है, किन्तु दृष्टान्त में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों का वाच्यरूप में प्रयोग होता है, जब कि अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत वाच्य होता है, प्रस्तुत व्यंग्य। यही कारण है कि अप्रस्तुतप्रशंसा में धर्म का प्रयोग केवल एक ही बार होगा, जब कि दृष्टान्त में धर्म का प्रयोग दोनों वाक्यों में भिन्न-भिन्न होगा।

१६. निदर्शना तथा दृष्टान्त में भेद

निदर्शना तथा दृष्टान्त दोनों में औपम्य गम्य होता है, यहाँ एक से अधिक वाक्य होते हैं (जैसे अनेकवाक्यगा निदर्शना में)। दोनों में सादृश्य वाक्यार्थगत होता है। साथ ही दोनों में बिंवप्रतिबिंवभाव पाया जाता है। किन्तु पहले तो दृष्टान्त में प्रयुक्त अनेक वाक्य परस्पर-निरपेक्ष होते हैं, जब कि निदर्शना में वे परस्पर सापेक्ष होते हैं, दूसरे, दृष्टान्त में प्रकृत तथा अप्रकृत पदार्थ के धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं तथा उनका निर्देश किया जाता है, जब कि निदर्शना में ये धर्म अभिन्न होते हैं, तथा उनका निर्देश नहीं किया जाता। तीसरे, यद्यपि दोनों में बिंवप्रतिबिंवभाव पाया जाता है, तथापि निदर्शना में प्रकृताप्रकृत के बिंवप्रतिबिंवभाव का आक्षेप किये बिना वाक्यार्थप्रतीति पूर्ण नहीं हो पाती, जब कि

दृष्टान्त में वाक्यार्थप्रतीति पूर्ण हो जाती है, तदनन्तर वाक्यार्थ के सामर्थ्य से प्रकृताप्रकृत के बिंबप्रतिबिंबभाव की प्रतीति होती है।

१७. समासोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा में भेद

समासोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा दोनों गम्योपम्याश्रय अलङ्कार हैं, तथा दोनों में दो अर्थों की प्रतीति होती है, इनमें एक वाच्यार्थ होता है, अन्य व्यंग्यार्थ। दोनों में भेद यह है कि समासोक्ति में वाच्यार्थ प्रकृतविषयक होता है, व्यंग्यार्थ अप्रकृतविषयक, जब कि अप्रस्तुतप्रशंसा में वाच्यार्थ अप्रकृतविषयक होता है, व्यंग्यार्थ प्रकृतविषयक।

१८. विशेषोक्ति तथा विभावना में भेद

दोनों अलंकार कार्यकारणभाव से सम्बद्ध विरोधगर्भ अलंकार हैं। इनमें भेद यह है कि (१) विशेषोक्ति में कारण के होते हुए भी कार्याभाव पाया जाता है, विभावना में कारण के बिना भी कार्योत्पत्ति वर्णित की जाती है। (२) विशेषोक्ति का चमत्कार कार्यानुत्पत्तिवाले अंश में होता है, विभावना का कार्योत्पत्तिवाले अंश में।

१९. काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास में भेद

वाक्यार्थगत काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास में एक समानता पाई जाती है कि दोनों में एक वाक्यार्थ दूसरे वाक्यार्थ की पुष्टि करता है। इस दृष्टि से दोनों में ही समर्थन पाया जाता है। किंतु (१) काव्यलिंग में किसी तथ्य का समर्थन किसी विशेष हेतु के द्वारा किया जाता है, जब कि अर्थान्तरन्यास में विशेष का सामान्य के द्वारा या सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन किया जाता है। इस प्रकार काव्यलिंग में दोनों वाक्यों में परस्पर कार्यकारणभाव होता है, अर्थान्तरन्यास में सामान्यविशेषभाव। विश्वनाथ ने इसीलिये अर्थान्तर-न्यास में समर्थक हेतु माना है, काव्यलिंग में निष्पादक हेतु। (२) काव्यलिंग में दोनों वाक्य प्रस्तुतपरक होते हैं, जब कि अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य प्रस्तुत-परक होता है, अन्य अप्रस्तुतपरक होता है।

अथ शब्दालङ्कारा:

१. अनुप्रासालङ्कारः

लक्षणम् : अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।

अन्वयः : स्वरस्य वैषम्ये अपि यत् शब्दसाम्यं (तत्) अनुप्रासः ।

व्याख्या : स्वरों की विषमता होने पर भी व्यञ्जनों की समानता अनुप्रास-नामक अलङ्कार कहलाता है । 'अनुप्रास' को इसलिए अनुप्रास कहा जाता है, क्योंकि यह रसभाव आदि के अनुकूल एक 'प्रकृष्ट' अर्थात् चमत्कारपूर्ण 'प्रास' अर्थात् शब्दों का न्यास (अनु + प्र + आस) होता है ।
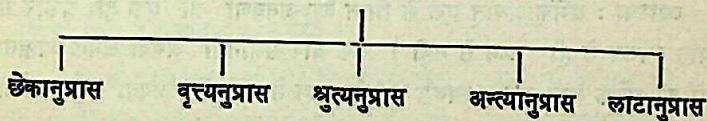
१. छेकानुप्रासः

लक्षणम् : छेको व्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा ।

अन्वयः : व्यञ्जनसङ्घस्य अनेकधा सकृत् साम्यं छेकः (छेकानुप्रासः) ।

व्याख्या : व्यञ्जनों के समूह की अनेक प्रकार से अर्थात् स्वरूप से और क्रम से सकृत् अर्थात् एक बार समानता छेकनामक अनुप्रास कहलाता है ।

उदाहरणम् : आदाय बकुलगन्धानन्धीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान् ।
अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः ॥

अर्थः : वकुल पुष्प के गन्ध को ग्रहण करता हुआ, पग-पग पर भ्रमरों को मस्त करता हुआ, कावेरी नदी के जल से पावन होता हुआ यह पवन धीरे-धीरे बह रहा है।

टिप्पणी : उक्त पद्य में न ध आदि व्यञ्जनों की तथा पदे पदे, मन्द मन्द आदि व्यञ्जनों की स्वरूप से तथा क्रम से समानता है।

छेक अर्थात् चतुर व्यक्ति द्वारा प्रयोज्य होने से यह अलङ्कार छेकानुप्रास कहलाता है।

२. वृत्त्यनुप्रासः

लक्षणम् : अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते॥

अन्वयः : अनेकस्य एकधा साम्यम्, (अनेकस्य) असकृद् अनेकधा अपि वा (साम्यम्), एकस्य सकृत् अपि (साम्यम्) एषः वृत्त्यनुप्रासः उच्यते।

व्याख्या : अनेक अर्थात् एक से भिन्न व्यञ्जनवर्णों की एक ही प्रकार से अर्थात् स्वरूप से ही (क्रम से नहीं) एक बार समानता अथवा अनेक व्यञ्जन-वर्णों की अनेक बार अर्थात् स्वरूप से और क्रम से आवृत्ति अथवा एक वर्ण की एक बार अथवा अनेक बार आवृत्ति वृत्त्यनुप्रास कहलाता है।

उदाहरणम् :

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः॥

अर्थः : प्रचुर मात्रा में निकलते हुए पुष्प-रस के गन्ध से लुब्ध भौंरों से कम्पित आम्र के अङ्कुरों पर विहार करती हुई कोयल की मधुर ध्वनि के कोला-

हल से वियोगियों के कानों में पीड़ा उत्पन्न किये हुए ये वसन्त ऋतु के दिन प्रियतमा के ध्यान में चित्त की एकाग्रता के समय अनुभूत प्राणप्रियासमागमरस-जन्य आनन्दवाले प्रवासी वियोगिजनों द्वारा बड़ी कठिनाई से बिताये जा रहे हैं।

टिप्पणी : प्रस्तुत उदाहरण में 'रसोल्लासैरमी' में र और स की स्वरूप से समानता है। 'वासराः' इस अंश को लेकर 'रसैः' के साथ अनेकधा समानता है। इसी प्रकार द्वितीय चरण में क, ल आदि वर्णों की अनेकधा समानता है। उपनागरिका, परुषा और कोमला (ग्राम्या) अथवा वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली वृत्ति के अनुरूप प्र = उत्तम रूप से विन्यास होने से यह वृत्यनुप्रास कहलाता है।

३. श्रुत्यनुप्रासः

लक्षणम् : उच्चार्यत्वाद् यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते॥

अन्वयः : यत् तालुरदादिके एकत्र स्थाने उच्चार्यत्वात् व्यञ्जनस्य एव सादृश्यं (सः) श्रुत्यनुप्रासः उच्यते।

व्याख्या : जो तालु, दन्त आदि वर्णोच्चारण स्थानों में से एक ही स्थान से उच्चरित होने के कारण व्यञ्जनवर्णों की ही (अर्थात् स्वरवर्णों की नहीं) समानता है, वह श्रुत्यनुप्रास कहलाता है।

उदाहरणम् : दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः॥

अर्थः : जो सुनयना स्त्रियाँ शिवजी के तृतीय नेत्र से भस्म किये गये कामदेव को अपनी दृष्टि से ही जीवित कर देती हैं (और इस प्रकार) शिवजी को जीतनेवाली उन स्त्रियों की हम लोग स्तुति करते हैं।

टिप्पणी : उक्त उदाहरण में 'जीवयन्ति, याः और जयिनीः' इस अंश में

ज और य एक ही उच्चारणस्थान तालु से उच्चरित होने से दोनों में समानता है।

सहृदयों (रसिकजनों) के श्रुति को सुखदायक होने से यह श्रुत्यनुप्रास कहलाता है।

४. अन्त्यानुप्रासः

लक्षणम् : व्यञ्जनं चेद् यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥

अन्वयः : यथावस्थं व्यञ्जनम् आद्येन स्वरेण सह आवर्त्यते चेत्, तु = र्तीह अन्त्ययोज्यत्वात् एव तत् अन्त्यानुप्रासः।

व्याख्या : यदि अपनी उच्चारणावस्था के अनुसार स्थित व्यञ्जनवर्ण प्रथम स्वरवर्ण के साथ पुनः पढ़ा जाता है, तो अन्त में प्रयोज्य होने के कारण ही वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है।

उदाहरणम् :

केशः काशस्तवकविकासः कायः प्रकटितकरभविलासः।
चक्षुर्दग्धवराटककल्पं त्यजति न चेतः काममनल्पम्॥

अर्थः : वृद्ध व्यक्ति के केश काशपुष्प के गुच्छ के समान विकासवाले हो गये हैं अर्थात् श्वेत हो गये हैं। शरीर हाथी के बच्चे के विलास के समान विलास-वाला हो गया है अर्थात् मन्दगमनवाला तथा झुका हुआ हो गया है और नेत्र जली हुई कौड़ी के समान हो गए हैं अर्थात् ज्योतिरहित हो गए हैं, तो भी चित्त प्रबल विषयेच्छा का त्याग नहीं कर रहा है।

टिप्पणी : उक्त पद्य में विकासः, विलासः, कल्पम्, अनल्पम् इन पदों में व्यञ्जनों में अनुस्वार, विसर्ग आदि के सहित समानता है। यह अनुप्रास पाद के अन्त में होने से अन्त्यानुप्रास कहलाता है। यह पदान्तानुप्रास भी होता है। जैसे—मन्दं हसन्तः पुलकं वहन्तः।

५. लाटानुप्रासः

लक्षणम् : शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः ।
लाटानुप्रास इत्युक्तः ।

अन्वयः : तात्पर्यमात्रतः भेदे शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं लाटानुप्रासः इति उक्तः ।

व्याख्या : वक्ता के तात्पर्यमात्र से भेद होने पर शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति (विद्वानों द्वारा) लाटानुप्रास कही गई है। अर्थात् शब्द की और अर्थ की (दोनों की) पुनरुक्ति होने पर ही उक्त अलंकार होता है।

उदाहरणम् : स्मेरराजीवनयने नयने किं निमीलिते ।
पश्य निर्जितकन्दर्पं कन्दर्पवशगं प्रियम् ॥

अर्थः : नायक को सामने देखकर अपने नेत्र वन्द की हुई मानिनी नायिका को उसकी सखी कह रही है—

हे विकसित कमल के समान नेत्रोंवाली ! तुमने अपने दोनों नेत्र क्यों बन्द कर लिए हैं ? तुम अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीते हुए अर्थात् अतिसुन्दर अपने पति को काम के वशीभूत हुआ समझो ।

टिप्पणी : उक्त पद्य में 'नयने नयने' और 'कन्दर्पं कन्दर्प·····' इन पदों में वक्ता का तात्पर्य भिन्न होते हुए शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति होने से लाटानुप्रास अलंकार है ।

यह अलंकार लाटदेश के निवासियों को प्रिय होने से लाटानुप्रास कहलाता है।

इसके अन्य उदाहरण 'नयने तस्यैव नयने च' और 'यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य। यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधिति-स्तस्य' हैं ।

२. यमकालङ्कारः

लक्षणम् : सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥

अन्वयः : अर्थे सति पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः तेनैव क्रमेण आवृत्तिः यमकं विनिगद्यते ।

व्याख्या : वाच्य अर्थ विद्यमान होने पर भिन्न अर्थवाले स्वरसहित व्यञ्जन-समूह की उसी क्रम से आवृत्ति यमक अलंकार कहलाता है। अर्थात् जिस क्रम से एक बार स्वरयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग हुआ है, उसी क्रम से उसी आकार-प्रकारवाले स्वरयुक्त व्यञ्जनों की पुनः आवृत्ति यमक अलंकार होता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि यमक में दोनों पद सार्थक होना आवश्यक नहीं होता। कभी एक पद सार्थक और दूसरा पद निरर्थक हो सकता है, कभी दोनों पद सार्थक हो सकते हैं और कभी दोनों पद निरर्थक हो सकते हैं।

उदाहरणम् :

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥

अर्थः : श्रीकृष्ण ने सामने नवीन पत्तोंवाले, पलाश के वनोंवाले, विकसित पुष्पपराग से व्याप्त कमलोंवाले और कोमल मुरझाई हुई लताओं के अन्तभाग-वाले तथा पुष्पसमूह से सुगन्धित वसन्तऋतु को देखा।

टिप्पणी : उक्त पद्य में 'पलाश-पलाश, पराग-पराग, लतान्त-लतान्त तथा सुरभिं-सुरभिं' इस अंश में स्वरयुक्त व्यञ्जनों की एक ही क्रम से आवृत्ति होने से यमक अलंकार है। यमक आदि अलंकारों में ड और ल में, व और व में तथा र और ल में एकता मानी जाती है। इसलिए, 'भुजलतां जडतामबलाजनः' इस पद्यांश में भी यमक अलंकार माना जाता है।

३. शब्दश्लेषालङ्कारः

लक्षणम् : श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ।

अन्वयः : श्लिष्टैः पदैः अनेकार्थाभिधाने श्लेषः इष्यते ।

व्याख्या : श्लिष्ट अर्थात् एक बार उच्चरित होने पर ही एक साथ अनेक

अर्थों का वोध करानेवाले पदों से अनेक अर्थों का अभिधावृत्ति से अभिधान करने पर कवियों द्वारा श्लेष अर्थात् शब्दश्लेषनामक अलंकार इष्ट होता है। यह आठ प्रकार का होता है—१. वर्णश्लेष, २. प्रत्ययश्लेष, ३. लिङ्गश्लेष, ४. प्रकृतिश्लेष, ५. पदश्लेष, ६. विभक्तिश्लेष, ७. वचनश्लेष, ८. भाषाश्लेष।

उदाहरणम् :

१. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्वनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥

अर्थः : भाग्य के विमुख हो जाने पर अनेक साधनों की सम्पन्नता निश्चित रूप से व्यर्थ हो जाती है। (पक्षान्तर में—चन्द्रमा के विरुद्ध फलवाले होने पर अनेक साधनों की सम्पन्नता व्यर्थ हो जाती है।) जैसे—पतनोन्मुखदिनाधिपति के हजारों किरण (हाथ) आश्रय के लिए गिरने से अर्थात् अस्त होने से वचने के लिए समर्थ नहीं हो पाते हैं।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य शिशुपालवधमहाकाव्य के नवें सर्ग में सूर्यास्तवर्णन के प्रसंग से उद्धृत है। यहाँ 'विधौ' रूप विधि और विधु शब्द का सप्तमी एकवचन का रूप है तथा 'कर' शब्द किरण तथा हाथ का वाचक है। भाग्यपरक तथा चन्द्रपरक दोनों अर्थ वाच्य = प्रस्तुत हैं। इसलिए यहाँ शब्दश्लेष है।

उक्त पद्य वर्णश्लेष नामक प्रथमभेद का भी उदाहरण है।

२. किरणा हरिणाङ्कस्य दक्षिणश्च समीरणः।
कान्तोत्सङ्गजुषां नूनं सर्व एव सुधाकिरः॥

उक्त पद्य में प्रयुक्त 'सुधाकिरः' पद में क्विप् प्रत्यय तथा कप्रत्यय का श्लेष होने से उक्त पद्य प्रत्ययश्लेष का उदाहरण है। उक्त पद्य में 'सर्व एव' वहुवचन और एकवचन को लेकर वचनश्लेष भी है।

३. विकसन्नेत्रनीलाब्जे तथा तन्व्याः स्तनद्वयी ।
तव दत्तां सदामोदं लसत्तरलहारिणी ॥

इस पद्य में 'लसत्तरलहारिणी' यह पद नपुंसकलिङ्ग द्विवचन तथा स्त्रीलिङ्ग एकवचन में एक ही प्रकार का होने से यहाँ लिङ्गश्लेष तथा वचनश्लेष का उदाहरण है ।

४. अयं सर्वाणि शास्त्राणि हृदि ज्ञेषु च वक्ष्यति ।
सामर्थ्यकृदमित्राणां मित्राणाञ्च नृपात्मजः ॥

इस पद्य में 'वक्ष्यति' यह रूप वह् धातु वच् धातु का लृट् एकवचन का रूप है । इसी प्रकार 'सामर्थ्यकृत्' यह रूप 'सामर्थ्य को काटनेवाला' इस अर्थ में कृती से क्विप् प्रत्यय करने पर बना हुआ और 'सामर्थ्य को करनेवाला' इस अर्थ में कृत् से क्विप् प्रत्यय करने पर भी बनता है । इसलिए, यह प्रकृतिश्लेष का उदाहरण है । प्रकृत में प्रकृति का अर्थ धातु है ।

५. पृथुकार्तस्वरपात्रं भूषितनिश्शेषपरिजनं देव ।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम् ॥

अर्थः : किसी राजा से दरिद्रता से ग्रस्त कवि कह रहा है—हे महाराज ! पृथु + कार्तस्वर + पात्रं—अत्यधिक सुवर्ण के पात्रोंवाला (कविपक्ष में - पृथुक + आर्तस्वर + पात्रं—बच्चों के पीड़ाजन्य स्वर का पात्र), भूषित + निश्शेष + परिजनं—अलङ्कृत सभी नौकरोंवाला (कविपक्ष में—भू + उषित + निश्शेष + परिजनं—भूमि पर निवास, शयन आदि करनेवाले सभी पारिवारिक सदस्योंवाला), विलसत् + करेणु + गहनं—शोभित हो रही हथिनियों से व्याप्त (कविपक्ष में—विल + सत्क + रेणुगहनं—चूहों आदि के बिलों में विद्यमान धूलि से व्याप्त) मेरा और आपका निवासस्थान इस समय समान हो गया है ।

टिप्पणी : इस पद्य में पद अलग-अलग करने पर विभक्ति और समास में भी अन्तर हो जाने से चमत्कार उत्पन्न हो रहा है; इसलिए, यहाँ पदश्लेष नामक श्लेषालङ्कार है ।

६. नीतानामाकुलीभावं लुब्धैर्भूरिशिलीमुखैः ।
सदृशे वनवृद्धानां कमलानां तदीक्षणे ॥

अर्थः : किसी नायिका के नेत्रों का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—अनेक वाणोंवाले व्याधजनों से व्याकुलता को प्राप्त हुए, वन में वृद्धि को प्राप्त हुए मृगों के नेत्रों के समान उस नायिका के नेत्र हैं। दूसरे पक्ष में इसका अर्थ इस प्रकार है—सुगन्ध के लोभी अनेक भ्रमरों से व्याकुलता को प्राप्त हुए जल में वृद्धि को प्राप्त हुए कमलपुष्पों के समान उस नायिका के नेत्र हैं।

टिप्पणी : इस पद्य में लुब्ध = व्याध और लोभी, शिलीमुख = बाण और भ्रमर, वन = जङ्गल और जल, कमल = मृग और कमलपुष्प इन शब्दों में विभक्त्यंश को लेकर विभक्तिश्लेष तथा शिलीमुख आदि में प्रकृतिश्लेष है।

७. सर्वस्वं हर सर्वस्य त्वं भवच्छेदतत्परः ।
नयोपकारसाम्मुख्यमायासि तनुवर्तनम् ॥

अर्थः : भगवान् शिव के प्रति कोई भक्त और पुत्र के प्रति कोई चोर-पिता कह रहा है—

हे हर ! आप सर्वस्य = सारे जगत् के, सर्वस्वं = सब कुछ हैं। त्वं = आप, भवच्छेदतत्परः = संसारबन्ध को काटने में संलग्न रहते हैं। आप नयोपकार-साम्मुख्यं = नीति और उपकार की ओर उन्मुख, तनुवर्तनम् = बार-बार अवतार को, आयासि = प्राप्त होते हैं।

पक्षान्तर में—हे पुत्र ! तुम सर्वस्य = सबका, सर्वस्वं = सारा धन, हर = चुरा लो, त्वं = तुम, छेदतत्परः = तुम्हारे विरोधी लोगों का नाश करनेवाले, भव = बनो, उपकारसाम्मुख्यं मा नय = उपकार के प्रति उन्मुखता को मत प्राप्त करो, आयासि वर्तनं तनु = लोगों को दुःख देनेवाली जीविका का विस्तार करो।

टिप्पणी : इस पद्य में हर और भव शिवजी का सम्बोधन है और हृ तथा भू धातु का लोट् मध्यमपुरुष एकवचन का रूप भी है। इसलिए, यहाँ पर वचनश्लेष तथा विभक्तिश्लेष है।

८. महदे सुरसन्धं मे तमव समासङ्गमागमाहरणे ।
हर वहुसरणं तं चित्तमोहमवसर उमे सहसा ॥

अर्थः : (संस्कृत भाषा के अनुसार) महदे = उत्सव को देनेवाली ! उमे = हे पार्वति, मे = मेरी, तम् = उस, सुरसन्धम् = देवों द्वारा भी प्रार्थनीय, आगमाहरणे = वेद-विद्या के अर्जन में, समासङ्गम् = आसक्ति की, अव = रक्षा कीजिये (और) अवसरे = उचित समय आने पर, वहुसरणं = अनेक प्रकार से प्रसृत होनेवाले, चित्तमोहं = मेरे चित्त में स्थित अज्ञान को, सहसा = तुरन्त, हर = नष्ट कीजिये ।

महाराष्ट्री प्राकृत भाषा के अनुसार पद्य इस प्रकार है—

मह देसु रसं धम्मे तमवसम् आसम् गमागमा हर णे ।
हरबहु सरणं तम् चित्तमोहम् अवसरउ मे सहसा ॥

इसकी संस्कृत छाया इस प्रकार है—

मम देहि रसं धर्मे तमोवशाम् आशाम् गमागमात् हर नः ।
हरवधु ! शरणं त्वं चित्तमोहः अपसरतु मे सहसा ॥

अर्थः : [महाराष्ट्री प्राकृत भाषा के अनुसार]—हरवधु = हे हर की पत्नी ! धर्मे मम रसं देहि = धर्मकर्म में मुझे प्रीति प्रदान कीजिये । नः गमागमात् तमोवशाम् आशाम् हर = हम लोगों की गमनागमनवाले संसार से तमोगुणयुक्त सांसारिक सुखेच्छा को दूर कीजिये । त्वं मे शरणम् = आप ही मेरी रक्षिका हैं । सहसा चित्तमोहः अपसरतु = मेरे हृदय में स्थित मोह शीघ्र दूर हो जाय ।

टिप्पणी : उक्त पद्य में संस्कृत भाषा और महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का श्लेष होने से यह भाषाश्लेष का उदाहरण है ।

उक्त आठ प्रकार का श्लेष ही सभङ्ग = पदों को अलग-अलग तोड़ने से होनेवाला, अभङ्ग = पदों को अलग-अलग बिना तोड़ होनेवाला और सभङ्गाभङ्ग = एक पद्य में विद्यमान कुछ पदों में सभङ्ग और तदन्य कुछ पदों में

अभङ्ग—इस प्रकार मिलाकर विद्यमान रहनेवाला ऐसे तीन भेदोंवाला भी होता है। इन तीनों के उदाहरण पूर्वोक्त आठ भेदों के उदाहरणों में ही निम्नलिखित प्रकार से समझने चाहिये।

सभङ्गश्लेष के उदाहरण—पृथुकार्तस्वरपात्रम्० इत्यादि पद्य तथा महदे सुरसन्धं मे० इत्यादि पद्य।

अभङ्गश्लेष के उदाहरण—प्रतिकूलतामुपगते० इत्यादि पद्य, किरणा हरिणाङ्कस्य० इत्यादि पद्य तथा नीतानामाकुलीभावम्० इत्यादि पद्य।

येन ध्वस्तमनोभवेन वलिजित्कायः पुरास्त्रीकृतो
यश्चोद्वृत्तभुजङ्गहारवलयो गङ्गाञ्च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्यञ्च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धकक्षयकरस्त्वां सर्वदो माधवः॥

सभङ्गाभङ्गश्लेष का उदाहरण—सर्वस्वं हर० इत्यादि पद्य।

इस पद्य में 'येन ध्वस्तमनोभवेन' इस अंश में सभङ्गश्लेष, 'अन्धकक्षयकरः' इस अंश में अभङ्गश्लेष और सम्पूर्ण पद्य को लेकर सभङ्गाभङ्गश्लेष का उदाहरण समझना चाहिए।

४. उपमालङ्कारः

लक्षणम् : साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।

अन्वय : वाक्यैक्ये द्वयोः अवैधर्म्यं वाच्यं साम्यं उपमा।

व्याख्या : वाक्य एक होने पर उपमान और उपमेय का विरुद्ध धर्मों के कथन से रहित इव आदि शब्दों से अभिधावृत्तिप्रतिपादित गुणविषयक तथा क्रियाविषयक समानता उपमानामक अलंकार है।
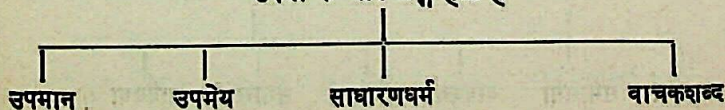
रूपक, परिणामालंकार आदि में समानता व्यंग्य होती है, किन्तु उपमा में वह वाच्य होती है। व्यतिरेक अलंकार में सादृश्य और वैधर्म्य दोनों वाच्य होते हैं। उपमेयोपमालंकार में दो वाक्य होते हैं, किन्तु उपमा में एक ही वाक्य होता है। अनन्वयालंकार में एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों होती है, किन्तु उपमालंकार में उपमान और उपमेय अलग-अलग होता है। इसलिए उपमालंकार उक्त अलंकारों से भिन्न है।

उदाहरणम् : कमलमिव मुखम्।

अर्थः : मुख कमल के समान (सुन्दर) है।

टिप्पणी : यहाँ मुख उपमेय, कमल उपमान तथा इव सादृश्यवाचक है। सौन्दर्यरूप साधारणधर्म वाच्य नहीं है।

१. पूर्णोपमा

लक्षणम् : सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च। उपमेयं चोपमानं भवेद् वाच्यम्।

अन्वयः : यदि सामान्यधर्मः औपम्यवाचि उपमेयं उपमानं च वाच्यं भवेत् (तर्हि) सा पूर्णा (उपमा भवति)।

व्याख्या : यदि साधारणधर्म, उपमावाचक शब्द, उपमेय और उपमान ये चारों वस्तुएँ वाच्य = अभिधावृत्ति से बोध्य हों, तो पूर्णोपमा होती है। पूर्णोपमा ६ प्रकार की होती है।
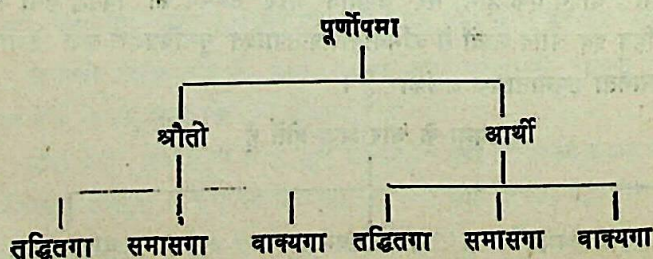
उदाहरणम् : रामः श्यामः इव सुन्दरः अस्ति ।

२. लुप्तोपमा

लक्षणम् : लुप्ता सामान्यधर्मादेरेकस्य यदि वा द्वयोः ।
त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत् ॥

अन्वयः : सामान्यधर्मादेः एकस्य यदि वा द्वयोः त्रयाणां वा अनुपादाने लुप्ता (उपमा भवति) सा अपि पूर्ववत् श्रौती आर्थी (च भवति) ।

व्याख्या : सामान्यधर्म, उपमान, उपमेय और वाचकशब्द—इन चारों में से एक का, दो का अथवा तीन का साक्षात् कथन न होने पर लुप्तोपमानामक उपमालङ्कार होता है । यह लुप्तोपमा भी पूर्णोपमा के समान श्रौती (शाब्दी) और आर्थी होती है ।

यह लुप्तोपमा श्रौती तद्धितगा नहीं होती । इसके अन्य पाँच प्रकार पूर्णोपमा के समान होते हैं ।
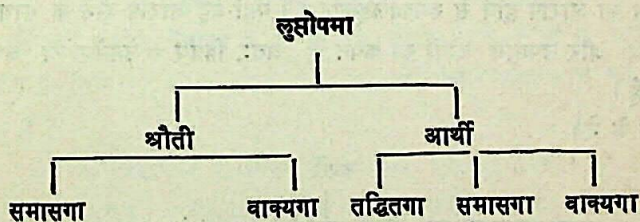
टिप्पणी : लुप्तोपमा में से, धर्मलुप्ता १० प्रकार की, उपमानलुप्ता २ प्रकार की, (औपम्य) वाचकलुप्ता २ प्रकार की, धर्मोपमानलुप्ता २ प्रकार की, धर्मवाचक-लुप्ता २ प्रकार की, उपमेयलुप्ता १ प्रकार की, धर्मोपमेयलुप्ता १ प्रकार की, धर्मोपमानवाचकलुप्ता १ प्रकार की होती है ।

अतः पूर्णोपमा ६ प्रकार की और लुप्तोपमा २१ प्रकार की; इस प्रकार उपमा कुल मिलाकर २७ प्रकार की साहित्यदर्पणकार द्वारा बतलाई गई है ।

५. रूपकालङ्कारः

लक्षणम् : रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे ।

अन्वयः : निरपह्नवे विषये रूपितारोपात् रूपकम् ।

व्याख्या : न छिपाये गये विषय अर्थात् उपमेय पर विषयी अर्थात् उपमान का अभेदसम्बन्ध से आरोप रूपकनामक अलङ्कार होता है। लक्षण में प्रयुक्त 'रूपित' पद 'परिणाम' अलङ्कार में अतिव्याप्ति हटाने के लिए दिया गया है। 'निरपह्नवे' पद अपह्नुति अलङ्कार में अतिव्याप्ति हटाने के लिए दिया गया है।

उदाहरणम् : पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः ।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥

अर्थः : मेघ के समान श्याम, शार्ङ्गनामक धनुष की डोरी को खींचने से कठोर और त्रिभुवनरूपी मण्डप के स्तम्भरूप भगवान् विष्णु के चारों बाहु तुम लोगों की रक्षा करें।

टिप्पणी : उक्त पद्य में त्रैलोक्य पर मण्डप का आरोप तथा हरिबाहुओं पर स्तम्भ का आरोप होने से रूपकालङ्कार है। यहाँ यह आरोप होने के साथ-साथ उपमेय और उपमान दोनों का कथन है; अतः, विषय = उपमेय का अपह्नव नहीं है।

रूपक के भेद

- रूपक
  - परम्परित
    - श्लिष्ट
      - केवल
      - मालारूप
    - अश्लिष्ट
      - केवल
      - मालारूप
  - साङ्ग
    - समस्तवस्तुविषय
    - एकदेशविवर्ति
  - निरङ्ग
    - केवल
    - मालारूप
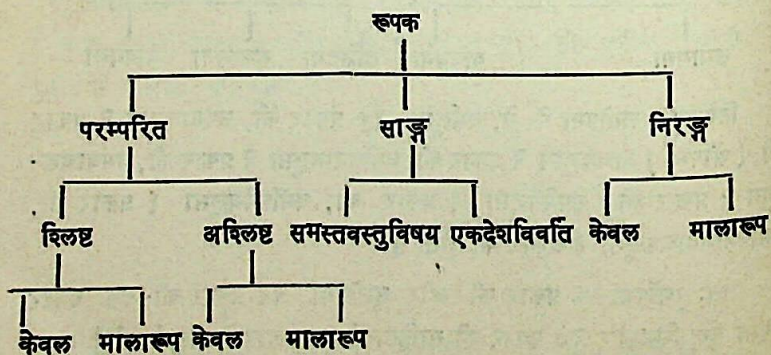
इस प्रकार रूपक के ये आठ भेद हैं। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

आहवे जगदुद्दण्डराजमण्डलराहवे।
श्रीनृसिंहमहीपाल स्वस्त्यस्तु तव वाहवे॥

टिप्पणी : यहाँ राजमण्डल में चन्द्रविम्ब का आरोप राजबाहु में राहुत्व के आरोप में निमित्त है। साथ ही अनेक शब्द श्लिष्ट हैं। अतः, यह पद्य श्लिष्टकेवल-परम्परितरूपक का उदाहरण है।

पद्मोदयदिनाधीशः सदागतिसमीरणः।
भूभृदावलिदम्भोलिरेक एव भवान्भुवि॥

टिप्पणी : पद्मा = लक्ष्मी का उदय ही पद्म = कमलों का उदय इत्यादि आरोप राजा में सूर्यत्वादि के आरोप में निमित्त है। साथ ही पद श्लिष्ट हैं। अतः, यह पद्य श्लिष्टमालारूपपरम्परितरूपक का उदाहरण है।

पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः॥

टिप्पणी : यहाँ त्रैलोक्य में मण्डप का आरोप हरिबाहुओं में स्तम्भों के आरोप में निमित्त है। अतः, यह पद्य अश्लिष्टकेवलपरम्परितरूपक का उदाहरण है।

मनोजराजस्य सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदङ्गनायाः।
विराजते व्योमसरःसरोजं कर्पूरपूरप्रभमिन्दुखण्डम्॥

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में श्लेषरहित पद हैं। अनेक क्रमिक वस्तुओं में अनेक वस्तुओं का आरोप है; अतः, यह पद्य अश्लिष्टमालारूपपरम्परितरूपक का उदाहरण है।

रावणावग्रहक्लान्तमितिवागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में रावण में वृष्टिरोधक का आरोप, वाणी में अमृत

(जल) का आरोप, देवों में फसल का आरोप और विष्णु में मेघ का आरोप होने से यह पद्य साङ्गसमस्तवस्तुविषयरूपक का उदाहरण है ।

लावण्यमधुभिः पूर्णमास्यमस्या विकस्वरम् ।
लोकलोचनरोलम्बकदम्बैः केन पीयते ॥

टिप्पणी : इस पद्य में लावण्य आदि में मकरन्द आदि का आरोप अभिधावृत्तिप्रतिपादित है, किन्तु मुख में पद्म का आरोप आर्थ है । अतः, यह पद्य साङ्गएकदेशविवर्तिरूपक का उदाहरण है ।

निर्माणकौशलं धातुश्चन्द्रिका लोकचक्षुषाम् ।
क्रीडागृहमनङ्गस्य सेयमिन्दीवरेक्षणा ॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में एक ही उपमेय (विषय) पर अनेक का आरोप होने से और उसके अङ्गों पर किसीका आरोप न होने से यह पद्य मालारूपनिरङ्गरूपक का उदाहरण है ।

दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणां
पादप्रहार इति सुन्दरि नात्र दूये ।
उद्यत्कठोरपुलकाङ्कुरकण्टकाग्रै-
र्यद् भिद्यते मृदु पदं ननु सा व्यथा मे ॥

यहाँ केवल रोमाञ्च पर कण्टकों का आरोप होने से यह पद्य केवलनिरङ्ग-रूपक का उदाहरण है ।

६. परिणामालङ्कारः

लक्षणम् : विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि ।
परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा ॥

अन्वयः : आरोप्ये विषयात्मतया प्रकृतार्थोपयोगिनि परिणामः भवेत् । (सः) तुल्यातुल्याधिकरणः द्विधा भवेत् ।

व्याख्या : आरोप्यमाण वस्तु अर्थात् उपमान में आरोपविषय अर्थात् उपमेय के अभिन्न होने के कारण प्रस्तुत कार्य के उपयोगी होने पर परिणामनामक अलंकार होता है। आरोप्यमाण का आरोपविषय के रूप से परिणमन होने के कारण इस अलंकार का नाम परिणाम है।

यह दो प्रकार का होता है—

१. तुल्याधिकरण = समान विभक्तिवाला।

२. अतुल्याधिकरण = असमान विभक्तिवाला।

दोनों प्रकार के परिणामों का उदाहरण—

स्मितेनोपायनं दूरादागतस्य कृतं मम।
स्तनोपपीडमाश्लेषः कृतो द्यूते पणस्तया॥

अर्थः : उस नायिका द्वारा दूर से आये हुए मुझे मन्दहास्यरूपी उपहार दिया गया तथा द्यूतक्रीडा में स्तनमर्दनयुक्त आलिङ्गनरूप पण स्थापित किया गया।

टिप्पणी : इस पद्य में पूर्वार्ध अतुल्याधिकरणपरिणाम का उदाहरण है, क्योंकि स्मित शब्द में तृतीया और उपायन शब्द में प्रथमा विभक्ति लगाई गई है। यहाँ स्मित उपमेय है अर्थात् विषय है और उपायन आरोप्यमाण = उपमान है। यहाँ स्मितरूप से उपायन प्रकृतोपयोगी है।

इस पद्य में उत्तरार्ध तुल्याधिकरणपरिणाम का उदाहरण है, क्योंकि आलिङ्गन और पण इन दोनों शब्दों में प्रथमा विभक्ति लगाई गई है। यहाँ आलिङ्गन-रूप से पण प्रकृतोपयोगी है।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः॥

यह कालिदासीय पद्य अधिकारूढवैशिष्ट्यपरिणामालङ्कार का उदाहरण है।

७. सन्देहालङ्कारः

लक्षणम् : सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।

अन्वयः : प्रकृते प्रतिभोत्थितः अन्यस्य संशयः सन्देहः ।

व्याख्या : प्रकृत अर्थात् उपमेय में कवि की प्रतिभा से सिद्ध उपमानविषयक संशय सन्देहनामक अलंकार कहलाता है ।

यह तीन प्रकार का होता है ।

सन्देह
- शुद्ध
- निश्चयगर्भ
- निश्चयान्त
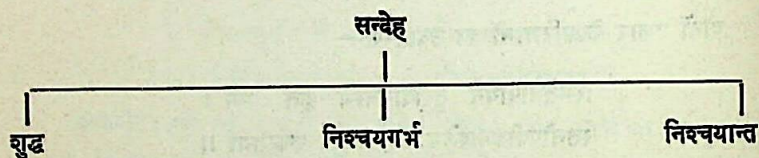
१. शुद्ध—जहाँ आदि मध्य अन्त—तीनों अवस्थाओं में संशय विद्यमान रहे, वह शुद्धसन्देहालंकार होता है ।

उदाहरणम् : किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नवा वल्लरी
वेलाप्रोच्छलितस्य किं लहरिका लावण्यवारांनिधेः ।
उद्गाढोत्कलिकावतां स्वसमयोपन्यासविश्रम्भिणः
किं साक्षादुपदेशयष्टिरथवा देवस्य शृङ्गारिणः ॥

प्रस्तुत पद्य में आदि से अन्त तक संशय विद्यमान है ।

२. निश्चयगर्भ = निश्चयमध्य—जहाँ आदि में और अन्त में संशय हो और मध्य में निश्चय हो वह निश्चयगर्भ अथवा निश्चयमध्यसन्देहालंकार होता है ।

उदाहरणम् : अयं मार्तण्डः किं स खलु तुरगैः सप्तभिरितः
कृशानुः किं सर्वाः प्रसरति दिशो नैष नियतम् ।

कृतान्तः किं साक्षान्महिषवहनोऽसाविति पुनः
समालोक्याजौ त्वां विदधति विकल्पान् प्रतिभटाः ॥

प्रस्तुत पद्य में आदि और अन्त में संशय है और मध्य में निश्चय है; अतः, यह निश्चयगर्भ अथवा निश्चयमध्यसन्देह का उदाहरण है।

३. निश्चयान्त—जहाँ आदि में संशय रहता है, किन्तु अन्त में निश्चय रहता है वह निश्चयान्तसन्देहालंकार होता है।

उदाहरणम् :

किं तावत्सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्याः।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद् विब्बोकैर्वकसहवासिनां परोक्षैः ॥

इस पद्य में आदि में संशय है और अन्त में निश्चय है।

८. भ्रान्तिमानलङ्कारः

लक्षणम् : साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थिता।

अन्वयः : साम्यात् प्रतिभोत्थिता अतस्मिन् तद्बुद्धिः भ्रान्तिमान्।

व्याख्या : समानता के कारण कवि की प्रतिभा से उत्पन्न जो वस्तु जैसी नहीं है, उस वस्तु के बारे में वैसा ज्ञान भ्रान्तिमान्नामक अलंकार है।

यह ध्यान रखने की बात है कि भ्रान्तिमान् अलंकार रूपक और अतिशयोक्ति से पृथक् है, क्योंकि रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप होता है तथा अतिशयोक्ति में उपमेय में उपमान का निश्चय होता है, किन्तु भ्रान्तिमान् अलंकार में उपमेय में उपमान का भ्रमात्मक ज्ञान होता है। 'गिलट को देखकर यह चाँदी है' ऐसा ज्ञान भ्रमात्मक होने पर भी चमत्कारजनक न होने से अलंकार नहीं है।

उदाहरणम् : मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो बल्लवाः
कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥

अर्थः : चन्द्रोदय होने पर चन्द्रिका के फैलने से भोले ग्वाले दूध की बुद्धि से गायों के नीचे घड़े रख रहे हैं। कान्ताएँ नीलकमल को श्वेतकमल की बुद्धि से अपने कानों पर रख रही हैं। शबर-स्त्री मुक्ताफल की इच्छा से (बैर के फल को मुक्ताफल समझकर) बैर के फल को इकट्ठा कर रही है। इस प्रकार चन्द्रमा घनी की चन्द्रिका किसके मन में भ्रम उत्पन्न नहीं कर रही है ?

टिप्पणी : इस पद्य में चन्द्रिका, श्वेतकमल आदि के सादृश्य के कारण, दुग्ध, नीलकमल आदि में प्रवृत्ति भ्रान्तिजन्य है और चमत्कार उत्पन्न करने-वाली है। अतः, यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार है। जहाँ चमत्कार न हो और सादृश्यमूलक भ्रान्ति न हो, वहाँ उक्त अलङ्कार का अवसर नहीं होता। जैसे— शुक्ति को देखकर हुआ रजतभ्रम जहाँ हो वहाँ चमत्कारराहित्य होने से भ्रान्ति होगी, किन्तु अलङ्कार नहीं होगा।

९. उल्लेखालङ्कारः

लक्षणम् : क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतॄणां विषयाणां तथा क्वचित्।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते ॥

अन्वयः : क्वचित् ग्रहीतॄणां भेदात् तथा क्वचित् विषयाणां (भेदात्) एकस्य यः अनेकधा उल्लेखः सः उल्लेखः उच्यते।

व्याख्या : कहीं ज्ञाताओं के भेद से और कहीं विषयों अर्थात् वस्तु में रहने-वाले धर्मों के भेद से जो एक ही वस्तु का अनेक रूपों में निर्धारण होता है वह निर्धारणउल्लेखनामक अलङ्कार कहलाता है।

उदाहरणम् :

प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरिति वृद्धैरधीश इति देवैः ।
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः ॥

टिप्पणी : यहाँ एक ही श्रीकृष्ण में ज्ञाताओं के भेद से अनेक रूपों में निर्धारित वर्णन किये गये हैं । इसलिए यहाँ ग्रहीतृभेदमूलक उल्लेखालङ्कार है ।

विषयभेदमूलक उल्लेखालङ्कार का उदाहरण—

गाम्भीर्येण समुद्रोऽसि गौरवेणासि पर्वतः ।

अर्थः : यहाँ किसी राजा का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि हे राजन् ! तुम गम्भीरता के कारण समुद्र हो और गौरव के कारण पर्वत हो । यहाँ एक ही राजा गम्भीरता आदि विषयों के भेद से समुद्रादि रूप में वर्णित हुआ है । इसलिए यहाँ विषयभेदमूलक उल्लेखालङ्कार है ।

१०. अपह्नुत्यलङ्कारः

लक्षणम् : प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः ।

अन्वयः : प्रकृतं प्रतिषिध्य अन्यस्थापनं अपह्नुतिः स्यात् ।

व्याख्या : प्रकृत अर्थात् उपमेय का शब्द से अथवा अर्थ से निषेध कर अन्य अर्थात् उपमान का स्थापन = आरोप करना अपह्नुतिनामक अलङ्कार होता है ।

उदाहरणम् :

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः ।
नाऽयं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नाऽसौ कलङ्कः शयितो मुरारिः ॥

उक्त पद्य अपह्नवपूर्वकारोपवती अपह्नुति का उदाहरण है ।

एतद् विभाति चरमाचलचूडचुम्बि डिण्डीरपिण्डरुचि शीतमरीचिविम्वम् ।
उज्ज्वालितस्य रजनीं मदनाऽनलस्य धूमं दधत्प्रकटलाञ्छनकैतवेन ॥

उक्त पद्य आरोपपूर्वकापह्नववती अपह्नुति का उदाहरण है ।

द्वितीय अपह्नुति

लक्षणम् : गोपनीयं कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथञ्चन ।
यदि श्लेषेणाऽन्यथा वान्यथयेत् साऽप्यपह्नुतिः ॥

व्याख्या : यदि कोई वक्ता किसी गोपनीय बात को शब्द, सादृश्य आदि के द्वारा प्रकट कर उस प्रकट की गई बात को श्लेष अथवा श्लेषभिन्न प्रकार से अन्यथा कर दे, तो वह भी अपह्नुतिनामक अलङ्कार होता है ।

श्लेषगतापह्नुतेः उदाहरणम्:

काले वारिधराणामपतितया नैव शक्यते स्थातुम् ।
उत्कण्ठितासि तरले ! नहि नहि सखि पिच्छिलः पन्थाः ॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में 'अपतितया' पद श्लिष्ट है जिसके दो अर्थ हैं—पतिविहीनतया और अपतिता = न गिरी हुई (तृ० ए० वचन) । यहाँ 'पतिविहीनतया' ऐसी स्पष्ट व्यञ्जना करके उसे 'न गिरी हुई' इस कथन से अन्यथा किया गया है ।

अतः, यह पद्य श्लेषमूलकव्यञ्जनान्यथाकरणनामक अपह्नुति का उदाहरण है ।

अश्लेषगतापह्नुतेः उदाहरणम् :

इह पुरोऽनिलकम्पितविग्रहा मिलति का न वनस्पतिना लता ।
स्मरसि किं सखि ! कान्तरतोत्सवं न हि घनागमरीतिरुदाहृता ॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में नायिका ने पहले कान्तसमागम का स्मरण स्पष्ट

किया है और बाद में उसका अपह्नव किया है। यहाँ पूर्वकथन अथवा अपह्नव में श्लेष नहीं है, श्लेषभिन्न रीति से पूर्वकथन और अपह्नव दोनों किया गया है।

अतः, यह पद्य अश्लेषमूलकव्यञ्जनान्यथाकरणनामक अपह्नुति का उदाहरण है।

११. उत्प्रेक्षालङ्कारः

लक्षणम् : भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।

अन्वयः : प्रकृतस्य परात्मना सम्भावना उत्प्रेक्षा भवेत्।

व्याख्या : प्रकृत अर्थात् उपमेय की पर अर्थात् उपमान के रूप में सम्भावना उत्प्रेक्षानामक अलङ्कार होता है।

सम्भावना का अर्थ है—उत्कट एक कोटिवाले संशय का ज्ञान।

उत्प्रेक्षा के भेद

- वाच्या (११२ भेद)
- प्रतीयमाना (६४ भेद)

वाच्योत्प्रेक्षाया उदाहरणम् :

ऊरुः कुरङ्गकदृशश्चञ्चलचेलाञ्चलो भाति।
सपताकः कनकमया विजयस्तम्भः स्मरस्येव॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में मृगनयनी के सूक्ष्म वस्त्ररूपी पताका से युक्त ऊरु में कामदेव के सुवर्णनिर्मित विजयस्तम्भ के रूप में सम्भावना की गई है।

यहाँ 'इव' शब्द का प्रयोग किया गया है; अतः, यह पद्य वाच्योत्प्रेक्षा का उदाहरण है।

प्रतीयमानोत्प्रेक्षाया उदाहरणम् :

तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम्।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया॥

टिप्पणी : उक्त पद्य में 'नायिका स्तनयुग्म द्वारा गुणी (गुणवान् और सूत्रबद्ध) हार को स्थान न देने के कारण मानों लज्जा से मुख प्रकट नहीं किया गया है ।' इस अर्थ में 'लज्जया इव' ऐसा 'इव' का प्रयोग नहीं किया गया है; अतः, यह प्रतीयमानोत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

उत्प्रेक्षा के अन्य प्रसिद्ध उदाहरण निम्न हैं—

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः ।
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव ॥

यह पद्य वाच्यगुणविषयिणी उत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

गङ्गाम्भसि सुरत्राण तव निःशाननिस्वनः ।
स्नातीवारिवधूवर्गगर्भपातनपातकी ॥

यह पद्य वाच्यक्रियाविषयिणी उत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

मुखमेणीदृशो भाति पूर्णचन्द्र इवाऽपरः ।

यह पद्य वाच्यद्रव्यविषयिणी उत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

कपोलफलकावस्याः कष्टं भूत्वा तथाविधौ ।
अपश्यन्ताविवान्योन्यमीदृक्षां क्षामतां गतौ ॥

यह पद्य क्रियाविषयक अभावोत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः ।
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम् ॥

यह पद्य क्रियारूप फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥

यह पद्य हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण है । यहाँ दुःखरूप गुण हेतु के रूप में उत्प्रेक्षित है ।

घटितमिवाञ्जनपुञ्जैः पूरितमिव मृगमदक्षोदैः ।
ततमिव तमालतरुभिर्वृतमिव नीलांशुकैर्भुवनम् ॥

और—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥

उक्त दोनों पद्य (प्रथम पद्य में अन्धकारसमूह के द्वारा भुवनव्यापन तथा द्वितीय पद्य में तमस् के लेपन का व्यापनरूप विषय = उपमेय शब्द से न बतलाये जाने के कारण) अनुक्तोपमेया उत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

१२. अतिशयोक्त्यलङ्कारः

लक्षणम् : सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते ।

अन्वयः : अध्यवसायस्य सिद्धत्वे अतिशयोक्तिः निगद्यते ।

व्याख्या : अध्यवसाय अर्थात् अध्यास के पूर्वसिद्ध होने पर अर्थात् सम्भावना के निश्चयरूप में परिणत होकर उपमान का रूप ग्रहण करने पर अतिशयोक्ति-नामक अलङ्कार होता है ।

अतिशयोक्ति के भेद

- भेदे अभेदः
- अभेदे भेदः
- सम्बन्धे असम्बन्धः
- असम्बन्धे सम्बन्धः
- कार्यहेत्वोः पौर्वापर्यविपर्ययः
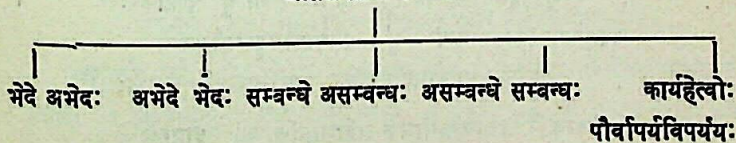
उदाहरणम् :

कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम् ।
कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात् ॥

अर्थः : इस पद्य में किसी नायिका का वर्णन करते हुए कहा जा रहा है— मोर के ऊपर उसका पुच्छ कैसे शोभित हो रहा है ? मोर के पुच्छ के नीचे

अष्टमी का चन्द्रखण्ड कैसे ? अष्टमी के चन्द्रखण्ड के नीचे दो नीलकमल कैसे ? दो कमलों के नीचे तिल का फूल कैसे ? तिलकुसुम के नीचे मूँगा अथवा नवीन पल्लव कैसे ?

टिप्पणी : यहाँ नायिका के केशपाश को मोर का पुच्छ, कपाल को अष्टमी का चन्द्रखण्ड, दो नेत्रों को नीलकमल, नाक को तिलपुष्प और ओष्ठ को प्रवाल बतलाया गया है। यहाँ यह विशेष है कि प्रत्येक वाक्य में उपमेय को शब्द से नहीं कहा गया है। उपमेय को शब्द से न बतलाकर किया गया आरोप ही निगीर्याध्यवसान कहा गया है।

यह पद्य भेद में अभेदनामक अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

सहाधरदलेनास्या यौवने रागभाक् प्रियः।

यह पद्यखण्ड भी भेद में अभेदनामक अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

अन्यदेवाङ्गलावण्यमन्याः सौरभसम्पदः।
तस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम् ॥

यह पद्य अभेद में भेदनामक अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥

यह पद्य सम्बन्ध में असम्बन्धनामक अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

यदि स्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम्।
तदोपमीयते तस्या वदनं चारुलोचनम् ॥

यह पद्य असम्बन्ध में सम्बन्धनामक अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

प्रागेव हरिणाक्षीणां चित्तमुत्कलिकाकुलम्।
पश्चादुद्भिन्नवकुलरसालमुकुलश्रियः ॥

यह पद्य कारण के पहले कार्य का होना इस अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

समभेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यं मण्डलञ्च महीक्षिताम् ॥

यह पद्य कार्य और कारण के समकालिकत्व की प्रतिपादिका अतिशयोक्ति का उदाहरण है।

१३. तुल्ययोगितालङ्कारः

लक्षणम् : पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात् तदा तुल्ययोगिता ॥

अन्वयः : यदा प्रस्तुतानाम् अन्येषां वा पदार्थानाम् एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात् तदा तुल्ययोगिता भवेत् ।

व्याख्या : जब प्राकरणिक अथवा अप्राकरणिक पदार्थों का गुण और क्रिया में से किसी एक धर्म के साथ संयोग होता है, तब तुल्ययोगितानामक अलङ्कार होता है।

उदाहरणम् :

अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः कृतमन्यवः पतिषु दीपदशाः ।
समयेन तेन सुचिरं शयितप्रतिबोधितस्मरमबोधिषत ॥

टिप्पणी : इस पद्य में प्रस्तुत सन्ध्यावर्णन से सम्बद्ध विभिन्न प्राकरणिक पदार्थों का एकबोधनरूप क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

तदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते ।
मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ॥

इस पद्य में अप्रस्तुत मालतीपुष्प, चन्द्रकला और कदली का कठोरतारूप एक गुण के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

दानं वित्तादृतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथायुषः ।
परोपकरणं कायादसारात् सारमाहरेत् ॥

इस पद्य में प्रस्तुतमात्र अथवा अप्रस्तुतमात्र पदार्थ दान, ऋत (सत्य), कीर्ति, धर्म और परोपकार—इन कर्मभूत पदार्थों का सारतारूप एक गुण के साथ सम्वन्ध होने से तुल्ययोगितानामक अलङ्कार है ।

१४. दीपकालङ्कारः

लक्षणम् : अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते ।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ॥

अन्वयः : अप्रस्तुतप्रस्तुतयोः (एकधर्माभिसम्वन्धः) (दीपकं निगद्यते) अथ अनेकासु क्रियासु एकं कारकं स्यात् चेत्, दीपकं निगद्यते ।

व्याख्या : १. यदि अप्रस्तुत अर्थात् अप्राकरणिक और प्रस्तुत अर्थात् प्राकरणिक पदार्थों का एक धर्म से सम्वन्ध हो, तो दीपक अलङ्कार होता है ।

२. यदि अनेक क्रियाओं में एक कारक हो, तो भी दीपक अलङ्कार होता है ।

उदाहरणम् :

वलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रवाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सतीव योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥

इस पद्य में सती स्त्री अप्राकरणिक है और प्रकृति प्राकरणिक है । दोनों अर्थों को देहली पर रखे हुए दीपक के समान दीपित करने के कारण उक्त पद्य में दीपक अलङ्कार है ।

१५. प्रतिवस्तूपमालङ्कारः

लक्षणम् : प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः ।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥

अन्वयः : यत्र गम्यसाम्ययोः वाक्ययोः एकः अपि सामान्यः धर्मः पृथक् निर्दिश्यते सा प्रतिवस्तूपमा स्यात् ।

व्याख्या : जिस काव्य में प्रतीयमान समानतावाले दो वाक्यार्थों में एक भी गुणरूप अथवा क्रियारूप साधारण धर्म पर्यायशब्द से कहा जाता है वहाँ प्रतिवस्तूपमानामक अलङ्कार होता है। प्रत्येक वस्तु की उपमा = समानता इसमें गम्य होने से इसका प्रतिवस्तूपमा नाम सार्थक है।

उदाहरणम् :

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारै-
यंया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।
इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया
यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ॥

अर्थः : दमयन्ती से हंस पक्षी कह रहा है—हे विदर्भराजकुमारि ! तुम धन्य हो जिस तुमने राजा नल को भी अपने महान् सौन्दर्य आदि गुणों से अच्छी प्रकार आकृष्ट किया है। चन्द्रिका की इससे अधिक क्या महिमा वर्णन की जा सकती है जो गम्भीर सागर को भी चञ्चल बना देती है।

टिप्पणी : इस पद्य में दमयन्ती और चन्द्रिका की और राजा नल तथा सागर की समानता प्रतीयमान है। दो पृथक्-पृथक् वाक्य हैं और दोनों में गुणरूप धर्म पर्यायशब्दों से निर्दिष्ट हुआ है। अतः, यहाँ प्रतिवस्तूपमानामक अलङ्कार है।

१६. दृष्टान्तालङ्कारः

लक्षणम् : दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् ।

अन्वयः : सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनं तु दृष्टान्तः ।

व्याख्या : समानधर्मवाली वस्तु का अर्थात् सामान्यधर्म का प्रतिबिम्बरूप से स्थापन दृष्टान्तनामक अलङ्कार होता है। यह प्रतिबिम्बरूप से स्थापन कभी

साधर्म्य को लेकर और कभी वैधर्म्य को लेकर होता है। अतः, दृष्टान्तालङ्कार भी दो प्रकार का होता है।
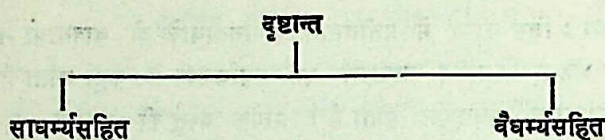
साधर्म्यसहितस्य उदाहरणम् :

अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥

अर्थः : श्रेष्ठ कवियों की वाणी अज्ञातगुणोंवाली होती हुई भी श्रोताओं के कानों में मधुररस की धारा को प्रकट करती है। मालतीपुष्प की माला अलब्ध सुगन्धवाली होती हुई भी नेत्रों को अपने अतिशयसौन्दर्य से आकृष्ट करती है।

टिप्पणी : इस पद्य में पूर्वार्ध में कही गई विषयवस्तु में और उत्तरार्ध में कही गई विषयवस्तु में साधर्म्य भी है और प्रतिविम्बभाव का स्थापन भी है। अतः, यह पद्य साधर्म्यसहितदृष्टान्त का उदाहरण है।

वैधर्म्यसहितस्य उदाहरणम् :

त्वयि दृष्टे कुरङ्गाक्ष्याः स्रंसते मदनव्यथा।
दृष्टानुदयभाजीन्दौ ग्लानिः कुमुदसंहतेः ॥

अर्थः : नायिका की दूती नायक से कह रही है—तुम्हारे दीखने पर मृगलोचनी की कामपीडा नष्ट हो जाती है। चन्द्र के उदित न होने पर कुमुदसमूह की मलिनता देखी गई है।

टिप्पणी : इस पद्य में कामपीडा का नष्ट होना और मलिनता का देखा जाना—ये दोनों परस्पर विपरीत बातें हैं, इनका वैपरीत्यसम्बन्ध से प्रतिबिम्बभाव होने से यह पद्य वैधर्म्यसहितदृष्टान्त का उदाहरण है।

१७. निदर्शनालङ्कारः

लक्षणम् : सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित् ।
यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ॥

अन्वयः : यत्र वस्तुसम्बन्धः कुत्रचित् सम्भवन् असम्भवन् वा अपि बिम्बानु बिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ।

व्याख्या : जहाँ वस्तुओं का सम्बन्ध कहीं अबाधित होता हुआ अथवा कहीं बाधित होता हुआ बिम्बप्रतिबिम्बभाव को अर्थात् उपमानोपमेयभाव को बोधित करे वह निदर्शनानामक अलंकार होता है ।

उदाहरणम् :

कोऽत्र भूमिवलये जनान् मुधा तापयन् सुचिरमेति सम्पदम् ।
वेदयन्निति दिनेन भानुमानाससाद चरमाचलं ततः ॥

अर्थः : इस भूमण्डल पर कौन मनुष्य व्यर्थ ही मनुष्यों को पीडित करता हुआ चिरकाल तक सम्पत्ति का उपभोग करता है ? अर्थात् कोई भी नहीं । सूर्य दिन के द्वारा इस बात का ज्ञान कराता हुआ दिन की समाप्ति पर अस्ताचल को प्राप्त हुआ ।

टिप्पणी : यह पद्य सम्भवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शनानामक निदर्शना का उदाहरण है, क्योंकि सूर्य का इस प्रकार का अर्थ बतलानेवाले वक्ता के रूप में अन्वय सम्भव ही है ।

कलयति कुवलयमालाललितं कुटिलः कटाक्षविक्षेपः ।
अधरः किसलयलीलामाननमस्याः कलानिधिविलासम् ॥

अर्थः : इस नायिका का कुटिल कटाक्षपात नीलकमलों की माला के सौन्दर्य को, अधरोष्ठ पल्लव की शोभा को तथा मुख चन्द्रमा की शोभा को धारण करता है ।

टिप्पणी : यह पद्य एकवाक्यगा असम्भवद्वस्तुनिदर्शनानामक निदर्शना

का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ वाक्य एक है और अन्य की शोभा को अन्य कैसे धारण करे ? इसलिए, उसकी शोभा के सदृश शोभा को धारण करता है, ऐसा अर्थ अपेक्षित होने से कटाक्षपात आदि और कमलमाला आदि का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव बोधित होता है।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः
तपःक्लमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।।

यह पद्य अनेकवाक्यगा सम्भवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शना का उदाहरण है।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।

यह पद्य सम्भवद्वस्तुसम्बन्धवर्णनानिदर्शना का उदाहरण है।

१८. व्यतिरेकालङ्कारः

लक्षणम् : आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथ वा । व्यतिरेकः ।

अन्वयः : उपमेयस्य आधिक्यम् अथ वा उपमानात् न्यूनता व्यतिरेकः ।

व्याख्या : उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिकता अथवा उपमान की अपेक्षा उपमेय की न्यूनता का वर्णन करना व्यतिरेकनामक अलंकार होता है।

उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिकता से अथवा न्यूनता से वैषम्य होता है। यह वैषम्य चमत्कारकारि होने से अलङ्कार बनता है।

उदाहरणम् :

अकलङ्कं मुखं तस्या न कलङ्की विधुर्यथा ।

अर्थः : उस नायिका का कलङ्करहित मुख कलङ्कयुक्त चन्द्रमा के समान नहीं है।

टिप्पणी : इस पद्यांश में उपमेयाधिक्यहेतुकव्यतिरेकालङ्कार है।

१९. समासोक्त्यलङ्कारः

लक्षणम् : समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः ।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ॥

अन्वयः : यत्र समैः कार्यलिङ्गविशेषणैः प्रस्तुते अन्यस्य वस्तुनः व्यवहार-समारोपः (तत्र) समासोक्तिः ।

व्याख्या : जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु में समानरूप से अन्वित होनेवाले कार्य, लिङ्ग और विशेषणों से प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु के व्यवहार का सम्यक् आरोप = अभेद का ज्ञान होता है वहाँ समासोक्तिनामक अलङ्कार होता है ।

उदाहरणम् :

व्याधूय यद् वसनमम्बुजलोचनाया
वक्षोजयोः कनककुम्भविलासभाजोः ।
आलिङ्गसि प्रसभमङ्गमशेषमस्या
धन्यस्त्वमेव मलयाचलगन्धवाह ॥

अर्थः : हे मलयपर्वत के पवन ! जो तुम कमलनयना नायिका के सुवर्ण-कलशसदृश स्तनों के वस्त्र को हटाते हुए इसके सम्पूर्ण शरीर को जबर्दस्ती आलिङ्गन कर रहे हो, अतः, तुम ही धन्य हो ।

टिप्पणी : यह पद्य समानकार्यमूलक समासोक्ति का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ प्राकरणिक पवन में अप्राकरणिक हठकामुक के व्यवहार का आरोप किया गया है ।

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः ।
अनाक्रम्य जगत् कृत्स्नं नो सन्ध्यां भजते रविः ॥

अर्थः : जिसकी विजयाभिलाषा पूर्ण नहीं हुई है, ऐसे मनस्वी मनुष्य को स्त्रीचिन्ता कैसी ? सूर्यनारायण सम्पूर्ण संसार को आक्रान्त किये बिना सायं-सन्ध्या का सेवन नहीं करते हैं ।

टिप्पणी : यहाँ पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग मात्र का प्रयोग होने से सूर्य और सन्ध्या में नायक और नायिका के व्यवहार का आरोप होने से समानलिङ्गमूलक समासोक्तिनामक अलङ्कार है ।

विकसितमुखीं रागासङ्गाद् गलत्तिमिरावृतिं
दिनकरकरस्पृष्टामैन्द्रीं निरीक्ष्य दिशं पुरः ।
जरठलवलीपाण्डुच्छायो भृशं कलुषान्तरः
श्रयति हरितं हन्त प्राचेतसीं तुहिनद्युतिः ।।

अर्थः : दुःख की वात है कि चन्द्रमा अपने सामने लालिमा के सम्पर्क से विकसित मुखवाली सरके जा रहे अन्धकाररूपी वस्त्रवाली ऐन्द्री दिग्रूपी नायिका को दिनकर के किरणरूप कर से स्पृष्ट हुई देखकर पकी हुई लवली लता के समान पीतवर्णवाली कान्तिवाला, अत्यधिक कलङ्क के कारण मलिन मध्यभागवाला होकर पश्चिम दिशा का = मरणदशा का आश्रय ले रहा है ।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य श्लिष्टविशेषणहेतुक समासोक्ति का उदाहरण है ।

निसर्गसौरभोद्भ्रान्तभृङ्गसङ्गीतशालिनी ।
उदिते वासराधीशे स्मेराऽजनि सरोजिनी ।।

टिप्पणी : यह पद्य साधारणविशेषहेतुक समासोक्ति का उदाहरण है ।

दन्तप्रभापुष्पचिता पाणिपल्लवशोभिनी ।
केशपाशालिवृन्देन सुवेशा हरिणेक्षणा ।।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य उपमागर्भविशेषणहेतुक समासोक्ति का उदाहरण है ।

२०. अर्थश्लेषालङ्कारः

लक्षणम् : शब्दैः स्वभावादेकार्थैः श्लेषोऽनेकार्थवाचनम् ।

अन्वयः : स्वभावात् एकार्थैः शब्दैः अनेकार्थवाचनं श्लेषः ।

व्याख्या : अभिधावृत्ति से स्वाभाविक रूप से एक अर्थ को बतलानेवाले शब्दों से अनेक अर्थ बतलाना अर्थश्लेषनामक अलङ्कार होता है । 'स्वाभाविक

रूप से एक अर्थ को बतलाने' ऐसा शब्दों का विशेषण देने से शब्दश्लेषनामक अलङ्कार का प्रसङ्ग नहीं होता है। 'वाचनम्' कहने से ध्वनि का प्रसङ्ग नहीं होता।

उदाहरणम् :

प्रवर्तयन् क्रियाः साध्वीर्मालिन्यं हरितां हरन्।
महसा भूयसा दीप्तो विराजति विभाकरः॥

अर्थः : (राजपक्ष में) अग्निहोत्रादि शुभ क्रियाओं को कराता हुआ, सभी दिशाओं में रहनेवाले मनुष्यों की दारिद्र्यमूलक मलिनता को दूर करता हुआ शौर्य के प्रभाव से प्रदीप्त होता हुआ विभाकरनामक राजा शोभित हो रहा है।

(सूर्यपक्ष में) शोभन वैदिक क्रियाओं को प्रारम्भ कराते हुए, सभी दिशाओं की अन्धकाररूपी मलिनता दूर करते हुए अत्यधिक तेज से जाज्वल्यमान सूर्य-नारायण प्रकाशित हो रहे हैं।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में एक अर्थवाले शब्दों से राजविषयक तथा सूर्य-विषयक—दोनों अर्थ वाच्य होकर उपस्थित हो रहे हैं, क्योंकि प्रकरण आदि निश्चित नहीं है।

२१. अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः

लक्षणम् : क्वचिद् विशेषः सामान्यात् सामान्यं वा विशेषतः॥
कार्यान्निमित्तं कार्यञ्च हेतोरथ समात् समम्।
अप्रस्तुतात् प्रस्तुतञ्चेद् गम्यते पञ्चधा ततः॥
अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद्

अन्वयः : क्वचित् अप्रस्तुतात् सामान्यात् प्रस्तुतं विशेषः, वा विशेषतः सामान्यं, कार्यात् निमित्तं हेतोः कार्यं अथ च समात् समं गम्यते चेत् ततः पञ्चधा अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्।

व्याख्या : यदि कहीं अप्रस्तुत सामान्य अर्थ से प्रस्तुत विशेष अर्थ व्यङ्ग्य होता

है, अथवा अप्रस्तुत विशेष से सामान्य अर्थ व्यङ्ग्य होता है, अथवा अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत हेतु व्यङ्ग्य होता है, अथवा अप्रस्तुत हेतु से प्रस्तुत कार्य व्यङ्ग्य होता है अथवा अप्रस्तुत समान कार्य से प्रस्तुत समान कार्य व्यङ्ग्य होता है, तो पाँच प्रकार की अप्रस्तुतप्रशंसा होती है।

उदाहरणम् :

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः॥

अर्थः : बलराम श्रीकृष्ण और उद्धव से कह रहे हैं—जो धूलि पैरों से प्रताड़ित होकर प्रताड़न करनेवाले के मस्तक पर आरूढ़ होती है वह धूलि अचेतन होती हुई भी अपमानित होने पर भी अकर्मण्य बैठे रहनेवाले सचेतन व्यक्ति से अधिक अच्छी है।

टिप्पणी : यहाँ धूलि हमसे अधिक अच्छी है ऐसा विशेष अर्थ प्राकरणिक है, किन्तु सामान्य सचेतन व्यक्ति का व्यवहार बतलाया गया है। अतः, यहाँ अप्रस्तुत सामान्य से प्रस्तुत विशेष व्यङ्ग्यवाली अप्रस्तुतप्रशंसा है।

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥

अर्थः : राजा अज रानी इन्दुमती के प्रति विलाप करता हुआ कह रहा है—यदि यह माला इन्दुमती के जीवन का अपहरण करनेवाली है, तो मेरे हृदय पर रखी जाने पर मुझे क्यों नहीं मार रही है। परमेश्वर की इच्छा से विष भी कभी अमृत बन जाता है और अमृत भी कभी विष बन जाता है।

टिप्पणी : यहाँ ईश्वरेच्छा से कहीं अहितकारी भी हितकारी होता है और कहीं हितकारी भी अहितकारी होता है, ऐसा सामान्य प्रस्तुत होने पर अप्रस्तुत विशेष बतलाया गया है।

अतः, यहाँ अप्रस्तुत विशेष से प्रस्तुत सामान्य व्यङ्ग्यवाली अप्रस्तुतप्रशंसा है।

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमदलं श्यामेव हेमप्रभा।
कार्कश्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाः पुरतश्च हन्ति शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव॥

अर्थः : यहाँ सीताजी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा जा रहा है—सीता के सम्मुख चन्द्रमा काजल से लिप्त हुए के समान सुन्दर नहीं प्रतीव होता है, हरिणियों की दृष्टि जड़ीभूत के समान प्रतीत होती है; विद्रुम की लालिमा अत्यधिक म्लान हो गई है; सुवर्ण की कान्ति कृष्णिमा के समान हो गई है; कोयलों के कण्ठ में काकलीशब्द से कर्कशता एकत्रित हो गई है तथा मयूरों के पिच्छ निन्दित के समान प्रतीत हो रहे हैं।

टिप्पणी : यहाँ सम्भावित हो रहे चन्द्रगत अञ्जनलिप्तत्व आदि अप्रस्तुत कार्यों से वदन आदि में स्थित विशेष सौन्दर्यरूप प्रस्तुत कारण व्यङ्ग्य है।

अतः, यहाँ अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कारण व्यङ्ग्यवाली अप्रस्तुतप्रशंसा है।

गच्छामीति मयोक्तया मृगदृशा निःश्वासमुद्रेकिणं
त्यक्त्वा तिर्यगवेक्ष्य बाष्पकलुषेणैकेन मां चक्षुषा।
अद्य प्रेम मदर्पितं प्रियसखीवृन्दे त्वया बध्यता-
मित्थं स्नेहविवर्धितो मृगशिशुः सोत्प्रासमाभाषितः॥

अर्थः : विदेश जाने को उद्यत व्यक्ति अपने विदेश न जाने का कारण बतला रहा है—'मैं जा रहा हूँ' ऐसा मेरे कहने पर मेरी मृगलोचना प्रिया ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर मुझे अश्रुओं से मलिन एक नेत्र से तिरछा देखकर पालित मृगशावक से कहा कि तुम मुझ पर स्थापित प्रेम को अब प्रियसखियों के समूह में रखना।

टिप्पणी : यहाँ नायिका का आचरण अप्रस्तुत कारण है और इस अप्रस्तुत कारण से नायक का अगमनरूप प्रस्तुत कार्य व्यङ्ग्य है।

अतः, यहाँ अप्रस्तुत कारण से प्रस्तुत कार्य व्यङ्ग्यवाली अप्रस्तुतप्रशंसा है।

सहकारः सदामोदो वसन्तश्रीसमन्वितः ।
समुज्ज्वलरुचिः श्रीमान् प्रभूतोत्कलिकाकुलः ॥

यह पद्य समान अप्रस्तुत से समान प्रस्तुत व्यङ्ग्यवाली अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण है ।

यहाँ सखी नायिका के भावी पति के सौन्दर्य का वर्णन आम्रवृक्ष के वर्णन के द्वारा कर रही है ।

पुंस्त्वादपि प्रविचलेद् यदि यद्यधोऽपि
यायाद् यदि प्रणयने न महानपि स्यात् ।
अभ्युद्धरेत् तदपि विश्वमितीदृशीयं
केनापि दिक् प्रकटिता पुरुषोत्तमेन ॥

टिप्पणी : इस पद्य में प्रस्तुत पुरुषोत्तमनामक राजा का मन्त्री उसे प्रोत्साहित करता हुआ अप्रस्तुत पुरुषोत्तम (विष्णु) के वर्णन के द्वारा उसे नीति का उपदेश कर रहा है ।

कोकिलोऽहं भवान् काकः समानः कालिमावयोः ।
अन्तरं कथयिष्यन्ति काकलीकोविदाः पुनः ॥

टिप्पणी : कोयल के समान गुणी कोई व्यक्ति कौवे के समान निर्गुण व्यक्ति से कह रहा है ।

यहाँ कोकिल और कौवा अप्रस्तुत हैं । अप्रस्तुत इनके वर्णन के द्वारा प्रस्तुत गुणी और निर्गुण व्यक्ति का व्यवहार बतलाया गया है ।

एकः कपोतपोतः शतशः श्येनाः क्षुधाऽभिधावन्ति ।
अम्बरमावृतिशून्यं हर हर शरणं विधेः करुणा ॥

टिप्पणी : यहाँ कपोत अप्रस्तुत है । उस अप्रस्तुत कपोत के व्यवहार के वर्णन से प्रस्तुत बालक का व्यवहार व्यङ्ग्य है ।

धन्याः खलु वने वाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः।
राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः॥

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में वन में के पवन धन्य हैं, मैं अधन्य हूँ, इस प्रकार वैधर्म्य से अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत व्यङ्ग्य हो रहा है।

अन्तश्छिद्राणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः।
कथं कमलनालस्य नाभूवन् भङ्गुरा गुणाः॥

टिप्पणी : कमल का डण्ठल अप्रस्तुत है। इस अप्रस्तुत के व्यवहार के वर्णन से प्रस्तुत दरिद्र, दोषयुक्तपरिवारवाले पुरुष की दशा व्यङ्ग्य हो रही है।

२२. व्याजस्तुत्यलङ्कारः

लक्षणम् : **उक्ता व्याजस्तुतिः पुनः।**
निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुतिनिन्दयोः॥

अन्वयः : वाच्याभ्यां निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः गम्यत्वे पुनः व्याजस्तुतिः उक्ता।

व्याख्या : वाच्य निन्दा से और स्तुति से क्रमशः स्तुति और निन्दा व्यङ्ग्य होने पर पुनः व्याजस्तुतिनामक अलङ्कार होता है।

यहाँ निन्दा से स्तुति व्यङ्ग्य होने पर 'व्याज से स्तुति=व्याजस्तुति' ऐसी व्युत्पत्ति होगी और स्तुति से निन्दा व्यङ्ग्य होने पर 'व्याजरूपा स्तुति=व्याजस्तुति' ऐसी व्युत्पत्ति होगी।

उदाहरणम् :

स्तनयुगमुक्ताभरणाः कण्टककलिताङ्गयष्टयो देव!।
त्वयि कुपिते प्रागिव विश्वस्ता द्विट्स्त्रियो जाताः॥

प्रथम अर्थः : हे महाराज! आपके शत्रुओं की स्त्रियाँ आपके क्रुद्ध होने पर

स्तनयुग पर मोतियों के आभूषणोंवाली, रोमाञ्च से युक्त शरीरवाली और पहले के समान विश्वासयुक्त हो गई हैं।

यह अर्थ निन्दारूप है। इससे निम्नलिखित स्तुतिरूप व्यङ्ग्य होता है।

द्वितीय अर्थः : हे महाराज ! आपके शत्रुओं की स्त्रियाँ आपके क्रुद्ध होने पर स्तनयुग पर से त्यक्त आभूषणोंवाली, भागते समय काँटों से विद्ध शरीरवाली और विधवा हो गई हैं।

द्वितीय उदाहरणम् :

व्याजस्तुतिस्तव पयोद मयोदितेयं
सज्जीवनाय जगतस्तव जीवनानि।
स्तोत्रं तु ते महदिदं घन धर्मराज-
साहाय्यमर्जयसि यत्पथिकान्निहत्य ॥

अर्थः : हे मेघ ! तुम्हारा जल संसार के जीवन के लिए है, यह तो मैंने तुम्हारी मिथ्या प्रशंसा की है। हे मेघ ! यह तो तुम्हारी बड़ी प्रशंसा है कि तुम वियोगी पथिकों को व्यथा से मारकर यमराज की सहायता करते हो।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में पूर्वार्ध में की गई मेघ की स्तुति से 'तुम वियोगी पथिकों को मारते हो' ऐसी निन्दा व्यङ्ग्य होने से व्याजस्तुतिनामक अलङ्कार है।

२३. अर्थान्तरन्यासालङ्कारः

लक्षणम् : **सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ॥
कार्यञ्च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा मतः ॥**

अन्वयः : यदि साधर्म्येण इतरेण वा विशेषेण सामान्यं वा तेन विशेषः कारणेन कार्यं (वा) कार्येण इदं समर्थ्यते (ततः) अष्टधा अर्थान्तरन्यासः मतः।

व्याख्या : यदि समान धर्म के द्वारा अथवा विपरीत धर्म के द्वारा विशेष से सामान्य का, सामान्य से विशेष का, कारण से कार्य का अथवा कार्य से कारण

का समर्थन किया जाता है, तो ८ प्रकार का अर्थान्तरन्यासनामक अलङ्कार होता है।

अर्थात् साधर्म्य से बननेवाले चार प्रकार और वैधर्म्य से बननेवाले चार प्रकार—इस प्रकार मिलाकर आठ भेद का अर्थान्तरन्यास होता है।

क्रमेण उदाहरणानि :

वृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्पूर्णाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥

अर्थः : अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य भी महान् मनुष्य की सहायता पाकर कार्य की सफलता प्राप्त कर लेता है। पर्वतीय क्षुद्र नदी गङ्गा आदि महती नदी के साथ सङ्गत होकर समुद्र को पा लेती है।

टिप्पणी : यह पद्य साधर्म्य को लेकर विशेष से सामान्य के समर्थन का उदाहरण है।

यावदर्थ्यपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥

अर्थः : श्रीकृष्ण इस प्रकार की परिमित अर्थ और शब्दवाली वाणी कहकर चुप हो गये। महान् मनुष्य स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य साधर्म्य को लेकर सामान्य से विशेष के समर्थन का उदाहरण है।

पृथ्वि ! स्थिरा भव भुजङ्गम ! धारयैनां
त्वं कूर्मराज ! तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत् त्रितये दिधीर्षा-
मार्यः करोति हरकार्मुकमाततज्यम्॥

अर्थः : लक्ष्मण कह रहे हैं—हे पृथिवि ! तुम स्थिर हो जाओ, हे शेषनाग ! तुम स्थिर होकर पृथ्वी को धारण करो, हे कच्छपराज ! तुम इन दोनों को

अर्थः : राम सीता के वियोग में व्याकुल होकर कह रहे हैं—हे प्रिये सीते! तुम्हारे नेत्रों के समान कान्तिवाला जो नीलकमल है वह जल में डूब गया, तुम्हारे मुख की कान्ति का अनुकरण करनेवाला चन्द्रमा बादलों द्वारा आच्छादित किया गया, जो तुम्हारी पदगति के समान गतिवाले थे वे राजहंस भी मानसरोवर में चले गये; इस प्रकार दैव के द्वारा तुम्हारे सादृश्य से होनेवाला विनोद भी सहन नहीं किया जा रहा है।

टिप्पणी : यह पद्य वाक्यार्थरूपहेतुवाले काव्यलिङ्गालङ्कार का उदाहरण है। यहाँ तीन पादों में के वाक्यार्थ चतुर्थ पादरूप वाक्यार्थ के हेतु हैं।

त्वद्वाजिराजिनिर्धूतधूलीपटलपङ्किलाम् ।
न धत्ते शिरसा गङ्गां भूरिभारभिया हरः ॥

अर्थः : कोई कवि किसी राजा से कह रहा है—तुम्हारे घोड़ों की पङ्क्ति से उड़ाई गई धूलि के समूह से दलदलवाली बनी हुई गङ्गा को भगवान् शिव अधिक भार बढ़ने के भय से अपने मस्तक पर धारण नहीं कर रहे हैं।

टिप्पणी : यह पद्य एकपदार्थरूप हेतुवाले काव्यलिङ्ग का उदाहरण है।

पश्यन्त्यसङ्ख्यपथगां त्वद्दानजलवाहिनीम् ।
देव त्रिपथगात्मानं गोपयत्युग्रमूर्धनि ॥

अर्थः : कोई कवि किसी राजा से कह रहा है—हे महाराज! असङ्ख्य पथों से बहनेवाली आपके दानजल की नदी को देखती हुई स्वर्ग-पृथ्वी-पाताल-इन तीन पथों से बहनेवाली गङ्गा नदी मानो सङ्कोच से स्वयं को भगवान् शिव के मस्तक में छिपा रही है।

टिप्पणी : यह पद्य अनेकपदार्थरूप हेतुवाले काव्यलिङ्ग का उदाहरण है।

२५. विभावनालङ्कारः

लक्षणम् : विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता ॥

अन्वयः : यत् हेतुं विना कार्योत्पत्तिः उच्यते (सा) विभावना । उक्तानुक्त-निमित्तत्वात् सा द्विधा परिकीर्तिता ।

व्याख्या : यदि किसी प्रसिद्ध हेतु के बिना किसी कार्य का होना बतलाया जाय, तो वह विभावनानामक अलङ्कार होता है। वह विभावना उक्तनिमित्ता और अनुक्तनिमित्ता—ऐसी दो प्रकार की होती है।

उदाहरणम् : अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ ।
अभूषणमनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः ॥

अर्थः : यौवनावस्था प्राप्त होने पर नायिका का कटिभाग परिश्रम के बिना ही कृश हो गया है, दोनों नेत्र शङ्का के बिना ही चञ्चल हो गए हैं और शरीर आभूषणों के बिना ही सुन्दर हो गया है।

टिप्पणी : यह पद्य उक्तनिमित्तवाली विभावना का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ वयस् = यौवनावस्थारूप निमित्त बतलाया गया है।

अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ ।
अभूषणमनोहारि वपुर्भाति मृगीदृशः ॥

टिप्पणी : यह पद्य अनुक्तनिमित्तवाली विभावना का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ यौवनावस्थारूपनिमित्त नहीं बतलाया गया है।

२६. विशेषोक्तिरलङ्कारः

लक्षणम् : सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ।

अन्वयः : हेतौ सति (अपि) फलाभावे विशेषोक्तिः तथा द्विधा ।

व्याख्या : मुख्य हेतु विद्यमान रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति न होने पर विशेषोक्तिनामक अलङ्कार होता है। यह विशेषोक्त्यलङ्कार विभावनालङ्कार के समान उक्तनिमित्त और अनुक्तनिमित्त भेद से दो प्रकार का होता है।

उदाहरणम् : धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः ।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः ॥

अर्थः : विशालहृदयवाले लोगों का वर्णन करते हुए कोई कह रहा है—

महामहिमावाले लोग धनी होते हुए भी उन्मादरहित, युवा होते हुए भी चञ्चलता-रहित और प्रभुतायुक्त होते हुए भी प्रमादरहित होते हैं।

टिप्पणी : यह पद्य उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण है। यहाँ 'धनी होना' यह उन्माद का कारण विद्यमान होने पर भी उन्मादरूप कार्य उत्पन्न नहीं हो रहा है; 'युवा होना' यह चञ्चलता का कारण विद्यमान होने पर भी चञ्चलता-रूप कार्य उत्पन्न नहीं हो रहा है; और 'प्रभु होना' यह प्रमाद का कारण विद्यमान होने पर भी प्रमादरूप कार्य उत्पन्न नहीं हो रहा है।

यहाँ सभी कारण शब्दतः कहे गये हैं, अतः, निमित्त उक्त होने के कारण यहाँ उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महामहिमशालित्व उक्त कारणों का कारण है। यह कारण शब्दतः प्रतिपादित है।

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते कियन्तः सन्ति भूतले॥

टिप्पणी : यह पद्य अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ ग्रन्थकार के अनुसार महामहिमशालित्व आदि निमित्त शब्दतः नहीं कहा गया है। विशेषोक्ति का एक भेद 'अचिन्त्यनिमित्ता' भी होता है, जो ग्रन्थकार के अनुसार 'अनुक्तनिमित्ता' में ही अन्तर्भूत है।

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः।
हरतापि तनुं यस्य शम्भुना न हृतं बलम्॥

टिप्पणी : यह पद्य अचिन्त्यनिमित्ता (अनुक्तनिमित्ता) विशेषोक्ति का उदाहरण है।

२७. विरोधालङ्कारः (विरोधाभासालङ्कारः)

लक्षणम् : जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः।
क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः॥
विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः॥

अन्वयः : यद्यदि जातिः जात्याद्यैः चतुर्भिः, गुणः गुणादिभिः त्रिभिः, क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां वा द्रव्यं द्रव्येण मिथः विरुद्धम् इव भासेत, (तर्हि) विरोधः। असौ दशाकृतिः।

व्याख्या : यदि जाति का गोत्व आदि जाति, शुक्ल आदि गुण, पाक आदि क्रिया और मोहन आदि व्यक्ति इन चार के साथ वास्तविक विरोध न रहने पर भी कवि प्रतिभावल से, कालमहिमा से अथवा ईश्वरेच्छा आदि से आपाततः विरोध भासे और बाद में विरोध का परिहार हो जाय, तो विरोध अथवा विरोधाभासनामक अलङ्कार होता है।

इसी प्रकार गुण का गुण आदि अर्थात् गुण, क्रिया और द्रव्य के साथ आपाततः विरोध भासे, क्रिया का क्रिया और द्रव्य के साथ आपाततः विरोध भासे और द्रव्य का द्रव्य के साथ आपाततः विरोध भासे, तो भी विरोध अथवा विरोधाभासनामक अलङ्कार होता है।

इस प्रकार विरोधालङ्कार १० प्रकार का होता है।

१. जाति का जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य से विरोध

२. जाति का जाति, गुण और क्रिया से विरोध

३. जाति का जाति और गुण से विरोध

४. जाति का जाति से विरोध

५. गुण का गुण, क्रिया और द्रव्य से विरोध

६. गुण का गुण और क्रिया से विरोध

७. गुण का गुण से विरोध

८. क्रिया का क्रिया और द्रव्य से विरोध

९. क्रिया का क्रिया से विरोध

१०. द्रव्य का द्रव्य से विरोध

उदाहरणानि :

तव विरहे मलयमरुद्दवानलः
शशिरुचोऽपि सोष्माणः ।
हृदयमलिरुतमपि भिन्ते
नलिनीदलमपि निदाघरविरस्याः ॥

अर्थः : नायक से नायिका की दूती कह रही है—तुम्हारा विरह होने पर इस नायिका के लिए मलयाचल से उत्पन्न सुगन्धित पवन भी दावाग्नि के समान सन्तापजनक है; चन्द्रमा की किरणें भी सन्तापदायक होने से उष्ण हैं; भ्रमरों की झङ्कार भी उद्दीपक होने से हृदय को विदीर्ण करती है और कमलिनी का पर्ण भी ग्रीष्मकालिक सूर्य के समान सन्तापक है ।

सन्ततमुसलासङ्गाद् बहुतरगृहकर्मघटनया नृपते ।
द्विजपत्नीनां कठिनाः सति भवति कराः सरोजसुकुमाराः ॥

अर्थः : किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कोई कवि कह रहा है—हे राजन् ! आपके राजा होने पर निरन्तर चावल स्वच्छ करने के लिए मुसल के सम्पर्क से तथा अनेक गृह-कार्यों को करने से ब्राह्मण-पत्नियों के कठोर हाथ कमल के समान कोमल हो गये हैं ।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य गुण का गुण से विरोध होने पर सम्भव विरोधालङ्कार का उदाहरण है । यहाँ भाव यह है कि राजा ने ब्राह्मणों को इतना अधिक दान दिया है कि ब्राह्मणपत्नियाँ सम्पन्न होने के कारण अब स्वयं गृहकार्य नहीं करतीं, अपितु दासियों से कराती हैं; जिसके परिणामस्वरूप उनके हाथ कमल के समान कोमल हो गये हैं ।

आपाततः, यहाँ 'कठिनता' गुण का 'कोमलता' गुण से विरोध है, किन्तु राजा के दानाधिक्य के कारण कोमलता उत्पन्न हुई है, ऐसा बोध होने पर विरोध का परिहार होता है ।

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥

अर्थः : देव भगवान् नारायण की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—कौन मनुष्य जन्मरहित होते हुए भी स्वेच्छा से जन्म ग्रहण करनेवाले, इच्छारहित होते हुए भी शत्रुओं का नाश किये हुए और सोते हुए भी जागरित रहनेवाले आपकी यथार्थता को जान सकता है ? अर्थात् कोई भी मनुष्य आपकी यथार्थता को नहीं जान सकता है।

टिप्पणी : यह पद्य गुण का क्रिया के साथ विरोध होने पर सम्भव विरोधाभास का उदाहरण है।

वल्लभोत्सङ्गसङ्गेन विना हरिणचक्षुषः।
राकाविभावरीजानिर्विषज्वालाकुलोऽभवत् ॥

अर्थः : किसी वियोगिनी के बारे में कहा जा रहा है—प्रियतम के अंक के सम्पर्क के बिना मृगनयनी के लिए पूर्णचन्द्र विषज्वालाओं से व्याप्त हो गया है।

टिप्पणी : यह पद्य गुण का द्रव्य के साथ विरोध होने पर सम्भव विरोधाभास का उदाहरण है, क्योंकि 'पूर्णचन्द्र' इस द्रव्य के साथ दाह को उत्पन्न करनेवाले गुण का आपाततः विरोध है, किन्तु वियोगावस्था के कारण उस विरोध का परिहार हो जाता है।

नयनयुगासेचनकं मानसवृत्त्यापि दुष्प्रापम्।
रूपमिदं मदिराक्ष्या मदयति हृदयं दुनोति च मे ॥

अर्थः : कोई अभिलाषी पुरुष अभिलषित नायिका को देखकर कह रहा है—मतवाले नयनोंवाली नायिका के नयनद्वय को तृप्त करनेवाला यह रूप मन से भी दुष्प्राप्य है, फिर भी यह रूप मेरे मन को मतवाला बना रहा है और पीड़ित कर रहा है।

टिप्पणी : यह पद्य क्रिया के साथ क्रिया का विरोध होने पर सम्भव

विरोधाभास का उदाहरण है, क्योंकि 'मतवाला बनाना' और 'पीड़ित करना' इन दोनों क्रियाओं का आपाततः विरोध है, किन्तु 'दीखने से प्रसन्न (मतवाला) बनाती है और अप्राप्य होने से पीड़ित करती है' ऐसा विरोध का परिहार होता है।

त्वद्वाजिराजिनिर्धूतधूलीपटलपङ्किलाम् ।
न धत्ते शिरसा गङ्गां भूरिभारभिया हरः ॥

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य क्रिया का द्रव्य के साथ विरोध होने पर सम्भव विरोधाभास का उदाहरण है।

वल्लभोत्सङ्गसङ्गेन विना हरिणचक्षुषः ।
राकाविभावरीजानिर्मध्यन्दिनदिनाधिपः ॥

टिप्पणी : परिवर्तित चतुर्थ चरणवाला यह पद्य द्रव्य का द्रव्य के साथ विरोध होने पर सम्भव विरोधाभास का उदाहरण है।

२८. कारणमालालङ्कारः

लक्षणम् : **परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता ।**
तदा कारणमाला स्यात् ॥

अन्वयः : यदा परं परं प्रति पूर्वपूर्वस्य हेतुता (स्यात्) तदा कारणमाला (नामकालङ्कारः) स्यात् ।

व्याख्या : जब उत्तर-उत्तर पदार्थ के प्रति पूर्व-पूर्व पदार्थ कारण होता है, तब कारणमालानामक अलङ्कार होता है।

इसी प्रकार जब पूर्व-पूर्व पदार्थ के प्रति उत्तर-उत्तर पदार्थ कारण होता है, तब भी कारणमालानामक अलङ्कार होता है।

उदाहरणम् : श्रुतं कृतधियां सङ्गाज्जायते विनयः श्रुतात् ।
लोकानुरागो विनयान्न किं लोकानुरागतः ॥

टिप्पणी : यह पद्य प्रथम कारणमाला का उदाहरण है। यहाँ उत्तर-उत्तर

काल में होनेवाले विनय आदि के प्रति पूर्व-पूर्व काल में होनेवाले श्रुत आदि कारण हैं।

भवन्ति नरकाः पापात् पापं दारिद्र्यसम्भवम्।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भव॥

टिप्पणी : यह पद्य द्वितीय प्रकार की कारणमाला का उदाहरण है। यहाँ पूर्व-पूर्व पदार्थ के प्रति उत्तर-उत्तर पदार्थ कारण हैं।

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्॥

टिप्पणी : यह पद्य भी कारणमाला का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ पूर्व-पूर्व पदार्थ उत्तर-उत्तर पदार्थ का कारण है।

२९. मालादीपकालङ्कारः

लक्षणम् : **तन्मालादीपकं पुनः।**
धर्मिणामेकधर्मेण सम्बन्धो यद् यथोत्तरम्॥

अन्वयः : यत् धर्मिणाम् एकधर्मेण (सह) यथोत्तरं (पदार्थं प्रति) सम्बन्धः तत् पुनः मालादीपकम्।

व्याख्या : अनेक धर्मियों का गुण अथवा क्रियारूप एक धर्म के साथ जो उत्तरोत्तर पदार्थ के प्रति सम्बन्ध है वह फिर मालादीपकनामक अलङ्कार होता है।

उदाहरणम् : त्वयि सङ्गरसम्प्राप्ते धनुषासादिताः शराः।
शरैररिशिरस्तेन भूस्तया त्वं त्वया यशः॥

अर्थः : किसी राजा की स्तुति करते हुए कोई कवि कह रहा है—तुम्हारे युद्ध में आने पर तुम्हारे धनुष् ने बाणों को प्राप्त किया, बाणों ने शत्रुओं का मस्तक प्राप्त किया, शत्रुओं के मस्तक ने पृथ्वी प्राप्त की, पृथ्वी ने आपको प्राप्त किया और आपने यश प्राप्त किया।

टिप्पणी : इस पद्य में मालादीपक अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ 'प्राप्त करना' इस क्रिया के साथ उत्तरोत्तर अनेक धर्मियों धनुष् आदि का सम्बन्ध है।

३०. एकावलीनामकालङ्कारः

लक्षणम् : पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात् तदैकावली द्विधा॥

अन्वयः : चेत् पूर्वं पूर्वं प्रति परं परं विशेषणत्वेन स्थाप्यते अपोह्यते वा तदा द्विधा एकावली स्यात्।

व्याख्या : यदि पूर्व पूर्व विशेष्य के प्रति उत्तर पदार्थ विशेषणरूप और वह विशेषण उत्तरवाक्य में विशेष्यरूप से स्थापित किया जाता है अथवा निषिद्ध किया जाता है, तो दो प्रकार से एकावलीनामक अलङ्कार होता है।

उदाहरणम् : सरो विकसिताम्भोजमम्भोजं भृङ्गसङ्गतम्।
भृङ्गा यत्र ससङ्गीताः सङ्गीतं सस्मरोदयम्॥

अर्थः : शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—जिस शरद् ऋतु में सरोवर विकसित कमलोंवाले हैं, कमल भ्रमरों से युक्त हैं, भ्रमर गुञ्जारव से युक्त हैं तथा भ्रमरगुञ्जारवरूप सङ्गीत काम का उद्दीपक है।

टिप्पणी : इस पद्य में एकावली अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ कमल प्रथमवाक्य में विशेषण है और द्वितीयवाक्य में विशेष्य है, भृङ्ग द्वितीयवाक्य में विशेषणांश है और तृतीयवाक्य में विशेष्य है, सङ्गीत तृतीयवाक्य में विशेषण है और चतुर्थवाक्य में विशेष्य है।

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥

टिप्पणी : यह पद्य विशेषण के निषेध पर आद्धृत एकावली का उदाहरण है।

वाप्यो भवन्ति विमलाः स्फुटन्ति कमलानि वापीषु।
कमलेषु पतन्त्यलयः करोति सङ्गीतमलिषु पदम्॥

टिप्पणी : यहाँ भी एकावलीनामक अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ उत्तरोत्तर विशेष्य के प्रति पूर्वपूर्व विशेष्य विशेषणरूप से उपन्यस्त हुआ है।

३१. परिसङ्ख्यालङ्कारः

लक्षणम् : प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥
परिसङ्ख्या

अन्वयः : चेत् प्रश्नात् अप्रश्नतः अपि वा कथितात् वस्तुनः तादृक् शाब्दः अथवा आर्थः अन्यव्यपोहः भवेत् तदा परिसङ्ख्या।

व्याख्या : यदि प्रश्नपूर्वक अथवा विना प्रश्न के ही कही हुई वस्तु से शाब्द अथवा आर्थ तत्सदृश अन्य वस्तु का निषेध हो, तो परिसङ्ख्यानामक अलङ्कार होता है।
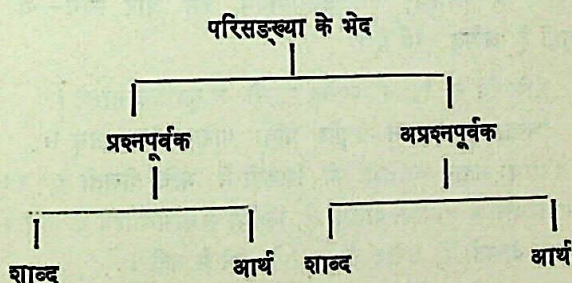
उदाहरणम् : किं भूषणं सुदृढमत्र यशो न रत्नं
किं कार्यमार्यचरितं सुकृतं न दोषः।
किं चक्षुरप्रतिहतं धिषणा न नेत्रं
जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकम् ॥

अर्थः : कोई प्रश्न पूछ रहा है और अन्य उसका उत्तर दे रहा है—दृढ़

भूषण क्या है ? यश, रत्न नहीं। क्या करना चाहिये ? आर्यों द्वारा आचरित सुन्दर कर्म, दोष नहीं। रुकावट से रहित नेत्र क्या हैं ? बुद्धि, नेत्र नहीं। उत्तरदाता के इस प्रकार के उत्तर से प्रसन्न होकर प्रश्नकर्ता कहता है—आपके सिवा कौन दूसरा सत् और असत् का विवेक जानता है ? अर्थात् कोई दूसरा नहीं।

टिप्पणी : यह पद्य प्रश्नपूर्वक शाब्द परिसङ्ख्या का उदाहरण है।

किमाराध्यं सदा पुण्यं कश्च सेव्यः सदागमः।
को ध्येयो भगवान् विष्णुः किं काम्यं परमं पदम् ॥

अर्थः : प्रश्न—सदा अनुष्ठेय क्या है ? उत्तर—पुण्य। प्रश्न—सेवनीय क्या है ? उत्तर—सत्शास्त्र अथवा सत्समागम। प्रश्न—ध्येय कौन है ? उत्तर—भगवान् विष्णु। प्रश्न—चाहने योग्य क्या है ? उत्तर—परमपद।

टिप्पणी : यह पद्य प्रश्नपूर्वक आर्थी परिसङ्ख्या का उदाहरण है, क्योंकि निषेध्य—पाप, असत्शास्त्र, असत्जनसमागम, धन और स्वर्ग—ये शब्दतः प्रतिपाद्य नहीं हैं, अपितु आर्थ हैं।

भक्तिर्भवे न विभवे व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामास्त्रे।
चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम् ॥

अर्थः : प्रायः महान् व्यक्तियों की शिवजी में भक्ति दीखती है, सम्पत्ति में नहीं। शास्त्राभ्यास में आसक्ति दीखती है, स्त्रियों के कामाशास्त्र में नहीं। यश के बारे में चिन्ता दीखती है, शरीर की रक्षा के बारे में नहीं।

टिप्पणी : यह पद्य अप्रश्नपूर्वक शाब्दी परिसङ्ख्या का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ कोई प्रश्न नहीं है, अपितु महान् व्यक्तियों के गुणों का वर्णन है और जिन वस्तुओं में उनकी प्रवृत्ति है उनका और जो वस्तुएँ निषेध्य हैं उनका भी शब्दतः प्रतिपादन किया गया है।

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सम्मतये बहु श्रुतम्।
वसु तस्य न केवलं विभोर्गुणवत्तापि परप्रयोजनम् ॥

अर्थः : उस राजा दशरथ की सेना पीड़ितों के भय को शान्त करने के लिए थी, दूसरों को पीड़ा देने के लिए नहीं थी। शास्त्रज्ञान विद्वानों का सम्मान करने के लिए था, विवाद करने के लिए नहीं था। धन ही नहीं, अपितु गुण भी स्वार्थ के लिए नहीं थे, अपितु दूसरों के हित के लिए थे।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य अप्रश्नपूर्वक आर्थी परिसङ्ख्या का उदाहरण है, क्योंकि उक्त पद्य में निषेध्य वस्तुओं का शब्दतः प्रतिपादन नहीं किया गया है।

१. अनन्वयालङ्कारः

लक्षणम् : उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः।

अन्वयः : एकस्यैव (वस्तुनः) उपमानोपमेयत्वं तु अनन्वयः।

व्याख्या : यदि एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों होती है, तो अनन्वय अलङ्कार होता है। यह उपमानोपमेयत्व एक ही वाक्य में अपेक्षित होता है।

उदाहरणम् : 'राजीवमिव राजीवं जलं जलमिवाजनि।
चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः शरत्समुदयोद्यमे॥'

अर्थः : शरद् ऋतु के आगमन का वर्णन करते हुए कोई कवि कह रहा है कि शरद् ऋतु के आरम्भ में कमल कमल के समान हो गया है, जल जल के समान हो गया है, चन्द्रमा चन्द्रमा के समान निर्मल हो गया है।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में तीनों वाक्यों में से क्रमशः एक-एक वाक्य में कमल, जल और चन्द्रमा उपमान तथा उपमेय दोनों वर्णित हैं; अतः, यहाँ अनन्वय अलंकार है।

२. उपमेयोपमालङ्कारः

लक्षणम् : पर्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमा मता।

अन्वयः : द्वयोः पर्यायेण एतत् उपमेयोपमा मता।

व्याख्या : यदि दो वस्तुओं का क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय वाक्य में उपमानत्व तथा उपमेय हो, तो उपमेयोपमा अलङ्कार होता है। अभिप्राय यह है कि यदि प्रथम वाक्य में जो वस्तु उपमान होती है, वह द्वितीय वाक्य में उपमेय होती है और जो वस्तु प्रथम वाक्य में उपमेय होती है वह द्वितीय वाक्य में उपमान हो जाती है, तो उपमेयोपमा अलङ्कार हो जाता है।

उदाहरणम् : 'कमलेव मतिर्मतिरिव कमला
तनुरिव विभा विभेव तनुः ।
धरणीव धृतिर्धृतिरिव धरणी
सततं विभाति बत यस्य ॥'

अर्थः : किसी राजा का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि जिसकी बुद्धि लक्ष्मी के समान है, लक्ष्मी बुद्धि के समान है, कान्ति शरीर के समान है, शरीर कान्ति के समान है, धैर्य पृथ्वी के समान है और पृथ्वी धैर्य के समान सतत शोभित होती है ।

टिप्पणी : प्रस्तुत पद्य में प्रथम वाक्य में लक्ष्मी उपमान है और द्वितीय वाक्य में लक्ष्मी उपमेय है; इसी प्रकार प्रथम वाक्य में बुद्धि उपमेय है और द्वितीय वाक्य में बुद्धि उपमान है । अतः, यहाँ उपमेयोपमा अलङ्कार है ।

३. स्मरणालङ्कारः

लक्षणम् : सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते ।

अन्वयः : सदृशानुभवात् वस्तुस्मृतिः स्मरणम् उच्यते ।

व्याख्या : यदि समान गुण, आकार आदि के कारण पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश वस्तु को देखने से पूर्वानुभूत तत्सदृश वस्तु का स्मरण हो, तो स्मरण अलङ्कार होता है ।

उदाहरणम् : 'अरविन्दमिदं वीक्ष्य खेलत्खञ्जनमञ्जुलम् ।
स्मरामि वदनं तस्याश्चारु चञ्चललोचनम् ॥'

अर्थः : मैं इस खेल रहे खञ्जन पक्षी के कारण सुहावने लग रहे कमल को देखकर उस अपनी प्रिया के चञ्चल नयनोंवाले सुहावने मुख का स्मरण कर रहा हूँ ।

टिप्पणी : इस पद्य में खेलता हुआ खञ्जन पक्षी चञ्चल नयन के समान और कमल मुख के समान होने से सर्वथा वदनतुल्य कमल को देखने से मुख का स्मरण हो रहा है; अतः, स्मरण अलङ्कार है ।

यह ध्यान रखने की बात है कि स्मरणालङ्कार तभी होगा, जब स्मरण चमत्कारजनक तथा सादृश्य को लेकर होगा। केवल स्मृति चमत्कारजनक न होने से अलङ्कार नहीं हो सकती है।

४. परिकरालङ्कारः

लक्षणम् : उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः।

अन्वयः : साभिप्रायैः विशेषणैः उक्तिः परिकरः मतः।

व्याख्या : प्रकृत अर्थ के परिपोषण के अभिप्राय से प्रयुक्त विशेषणों के साथ वस्तु को बतलाना परिकर अलङ्कार होता है। यहाँ प्रकृत अर्थ के उपपादक व्यंग्य की आवश्यकता होती है, जब कि 'हेतु' अलङ्कार में तादृश व्यंग्य की आवश्यकता नहीं होती।

उदाहरणम् : अङ्गराज ! सेनापते ! द्रोणोपहासिन् ! कर्ण ! रक्षैनं भीमाद् दुश्शासनम्।

अर्थः : प्रस्तुत गद्य नारायणभट्टरचित वेणीसंहारनामक नाटक में भीम के हाथों मारे जा रहे दुःशासन को बचाने के लिए कर्ण के प्रति अश्वत्थामा का कथन है—हे अंगदेश के राजा, सेनापति, द्रोणाचार्य का उपहास करनेवाले कर्ण ! इस दुःशासन को भीमसेन से बचाओ।

टिप्पणी : यहाँ कर्ण के उक्त विशेषण देने से कर्ण की बलवत्ता, अहङ्कारी वृत्ति, द्रोणाचार्य का किया गया अपमान आदि व्यंग्य है, ऐसा भी कर्ण दुःशासन को भीमसेन से बचा नहीं सकता, फिर भी अश्वत्थामा द्वारा कर्ण के प्रति उक्त विशेषणों के साथ सम्बोधन प्रकृत अर्थ का परिपोषक तथा चमत्कारजनक होने से परिकर अलङ्कार है।
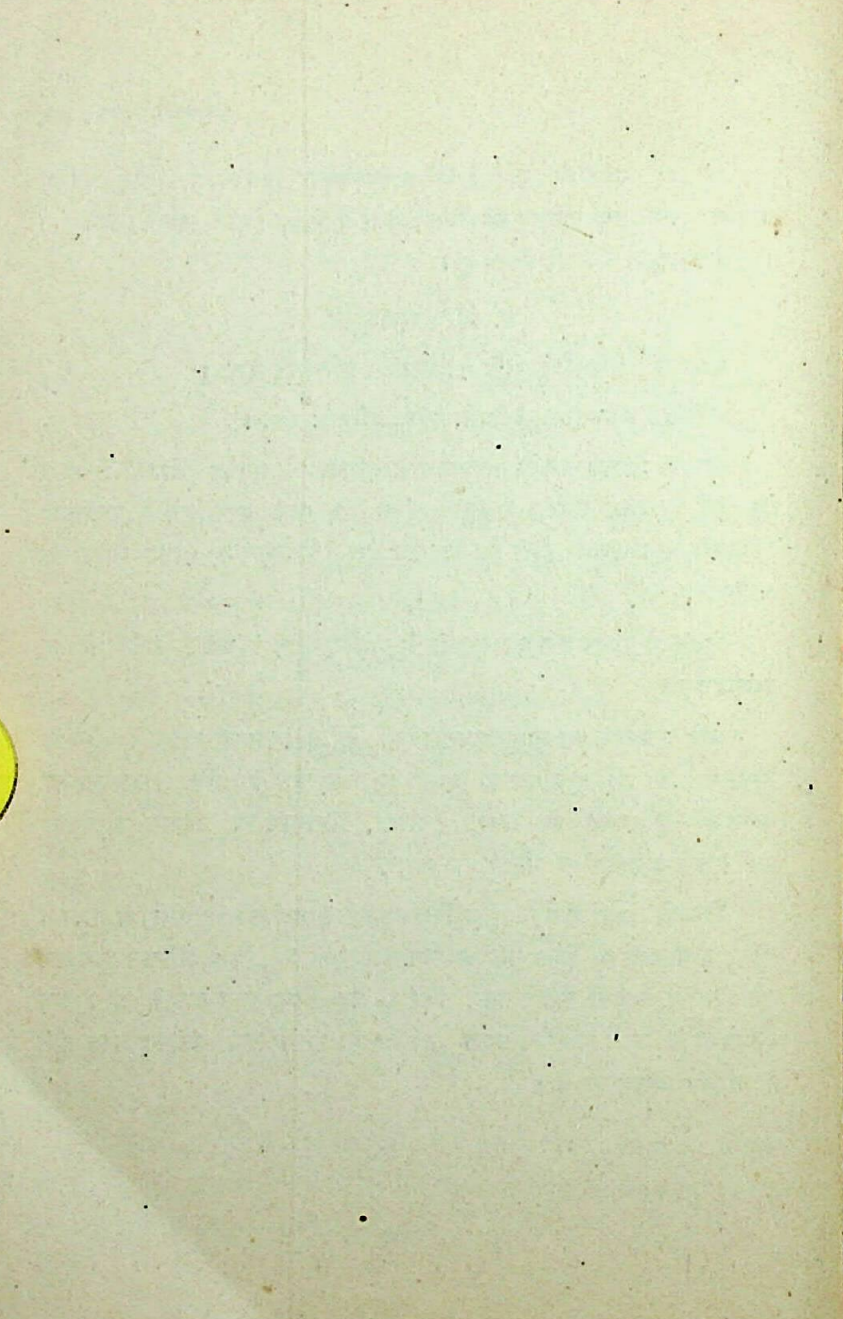
॥ श्री ॥

छन्दोमञ्जरी-सुधा

प्रथमः स्तबकः

देवं प्रणम्य गोपालं वैद्यगोपालदासजः ।
सन्तोषातनयश्छन्दो गङ्गादासस्तनोत्यदः ॥ १ ॥

वैद्य गोपालदास से उत्पन्न, सन्तोषा का पुत्र गंगादास गोपाल देव को प्रणाम कर इस छन्द (शास्त्र) की रचना करता है ।

इयमच्युतलीलाढचा सद्वृत्ता जातिशालिनी ।
छन्दसां मञ्जरी कान्ता सभ्यकण्ठे लगिष्यति ॥ २ ॥

कृष्ण की लीला से समृद्ध, सुन्दर वृत्तोंवाली, जाति से सुशोभित यह कमनीय छन्दोमंजरी कण्ठ में पड़ जायेगी ।

पद्यं चतुष्पदी, तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा ।
वृत्तमक्षरसङ्ख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत् ॥ ३ ॥

श्लोक चार चरणोंवाला होता है । वह वृत्त और जाति दो प्रकार का है । जिसमें अक्षर की गणना होती है, वह वृत्त है । जाति मात्रा से बनती है ।

टिप्पणी—प्रत्येक श्लोक में चार भाग हैं । प्रत्येक भाग को पाद या चरण कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं—१. वृत्त, २. जाति । वृत्त में गणना अक्षरों द्वारा की जाती है । जाति में गणना का आधार मात्राएँ होती हैं । मात्रा की दृष्टि से अक्षर तीन प्रकार के होते हैं—१. ह्रस्व, २. दीर्घ, ३. प्लुत । ह्रस्व की एक मात्रा, दीर्घ की दो मात्रा तथा प्लुत की तीन मात्रा मानी जाती है ।

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेय व्यञ्जनश्चार्धमात्रकम् ॥

छन्दशास्त्र में ह्रस्व को लघु तथा दीर्घ को गुरु कहा जाता है ।

सममर्धसमं वृत्तं विषमञ्चेति तत् त्रिधा ।
समं समचतुष्पाद भवत्यर्धसमं पुनः ॥ ४ ॥
आदिस्तृतीयवद् यस्य पादस्तुर्यो द्वितीयवत् ।
भिन्नचिह्नचतुष्पादं विषमं परिकीर्तितम् ॥ ५ ॥

वह (वृत्त) तीन तरह का होता है—१. सम, २. अर्धसम, ३. विषम । सम के चारों चरण सम (समान अक्षर से युक्त) होते हैं । जिसका पहला चरण तीसरे चरण के तथा दूसरा चौथे के सदृश हो वह अर्धसम (वृत्त) है । जिसके चारों पाद भिन्न हों उसे विषम (वृत्त) कहा गया है ।

म्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः ।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ॥ ६ ॥

जिस प्रकार विष्णु ने त्रिलोक को व्याप्त कर रखा है उसी प्रकार म, य, र, स, त, ज, भ, न, ग, ल—इन दश अक्षरों से समस्त छन्दशास्त्र व्याप्त है ।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरु मध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ॥ ७ ॥

तीन गुरुवाला 'म', तीन लघुवाला 'न', आदि गुरुवाला 'भ', आदि लघुवाला 'य', जिसके मध्य में गुरु हो वह 'ज', जिसके मध्य में लघु हो वह 'र', अन्त में गुरुवाला 'स' तथा अन्त में लघुवाला 'त' होता है ।

टिप्पणी—उपर्युक्त दोनों श्लोकों में पद्य के अक्षर की गणना में प्रयुक्त होनेवाले गणों का वर्णन किया गया है । प्रत्येक गण में तीन अक्षर होते हैं । 'म' आदि अक्षर गणों को संकेतित करनेवाले प्रथम अक्षर हैं । इस प्रकार मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण तथा तगण के द्वारा ही कोई विशेष छन्द बनता है । लघु तथा गुरु को विशेष चिह्नों द्वारा संकेतित किया जाता है । लघु-गुरु अक्षरों की संयोजना से ही गण अस्तित्व में आते हैं ।

ह्रस्व ।
गुरु ऽ

मगण	ऽ ऽ ऽ	जगण	। ऽ ।
नगण	। । ।	रगण	ऽ । ऽ
भगण	ऽ । ।	सगण	। । ऽ
यगण	। ऽ ऽ	तगण	ऽ ऽ ।

गणों की जानकारी के लिए एक सूत्र है—यमाताराजभानसलगम्। इसमें प्रत्येक तीन अक्षर का एक गण बनता है। कोई तीन अक्षर लेकर प्रथम अक्षर से अभिहित गण की रचना हो जायेगी।

गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः।
क्रमेण चैषां रेखाभिः संस्थानं दर्श्यते यथा ॥ ८ ॥
ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कलाः।
गणाश्चतुर्लघूपेताः पञ्चार्यादिषु संस्थिताः ॥ ९ ॥

श्लोक के जाति नामक भेद की गणना मात्रा द्वारा होती है। इसमें पाँच गण होते हैं—१. सर्वगुरु, २. अन्तगुरु, ३. आदिगुरु, ४. मध्यगुरु, ५. चतुर्लघु। सभी गणों में चार मात्राएँ होती हैं।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥ १० ॥

अनुस्वारयुक्त, दीर्घ, विसर्गयुक्त तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व का अक्षर गुरु होता है। पाद के अन्त में आनेवाले लघु तथा गुरु अक्षर विकल्प से क्रमशः गुरु तथा लघु माने जाते हैं।

यतिर्जिह्वेष्टविश्रामस्थानं कविभिरुच्यते।
सा विच्छेदविरामाद्यैः पदैर्वाच्या निजेच्छया ॥

जहाँ-जहाँ इच्छापूर्वक जीभ रुक जाती है, वहाँ-वहाँ यति होती है; ऐसा कवियों ने कहा है। यह उच्चारण करनेवाले की इच्छा पर निर्भर है। इसे विच्छेद, विराम आदि पदों द्वारा अभिहित किया जाता है।

टिप्पणी—श्लोक पढ़ते समय पाठक जहाँ रुक जाता है, वहाँ रुकने की स्थिति को यति कहा जाता है। यह कभी छन्द के मध्य में होती है और कभी अन्त में। परन्तु पद की समाप्ति में होनेवाली यति सुन्दर मानी जाती है। पद के मध्य में होनेवाली यति छन्द-सौन्दर्य को नष्ट कर देती है। पद के मध्य में यदि यति स्वर-सन्धि से युक्त होती है तो वह शोभादायक बनती है। श्वेत-माण्डव्य आदि मुनि छन्द में यति की आवश्यकता नहीं स्वीकारते। मुख्यरूप से छब्बीस प्रकार के छन्द होते हैं—

१. उक्था	१४. शर्करी
२. अत्युक्था	१५. अतिशर्करी
३. मध्या	१६. अष्टि
४. प्रतिष्ठा	१७. अत्यष्टि
५. सुप्रतिष्ठा	१८. धृति
६. गायत्री	१९. अतिधृति
७. उष्णिक्	२०. कृति
८. अनुष्टुप्	२१. प्रकृति
९. बृहती	२२. आकृति
१०. पंक्ति	२३. विकृति
११. त्रिष्टुप्	२४. संस्कृति
१२. जगती	२५. अतिकृति
१३. अतिजगती	२६. उत्कृति

ये छन्द क्रमशः एक अक्षर से छब्बीस अक्षर के होते हैं।

इति प्रथमः स्तबकः।

द्वितीयः स्तबकः

समवृत्त छन्द

त्रिष्टुप्, एकादशाक्षरा वृत्ति

इन्द्रवज्रा—

त त ज , ग ग

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ १ ॥

यदि = यदि, तौ—तश्च तश्च तौ = दो तगण, जगौ—जश्च गश्च जगौ = जगण और गुरु, गः = (तथा पुनः) एक गुरु (हो तो वह छन्द) इन्द्रवज्रा स्याद् = इन्द्रवज्रा नामक होता है।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण—गुरु, गुरु, लघु, गुरु, गुरु, लघु, एक जगण—लघु, गुरु, लघु तथा दो गुरु वर्ण हों वह इन्द्रवज्रा है।

यह त्रिष्टुप् वृत्ति का छन्द है। इसके चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द ४४ अक्षरों का होता है। इन्द्रवज्रा का उपर्युक्त लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण—

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः॥

जिस चक्रधारी कृष्ण ने क्रुद्ध इन्द्र के द्वारा वज्रपात के साथ वर्षा करने पर गोठ में अपने बायें हाथ से पर्वत को धारण कर गोवंश और गोपकुल को विपत्ति-विहीन बनाया, वह हमारी रक्षा करे।

उपेन्द्रवज्रा—

ज त ज ग ग

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा॥ २॥

सा = इन्द्रवज्रा का यदि, प्रथमे = प्रथम अक्षर, लघौ = लघु हो तो उपेन्द्र-वज्रा छन्द होता है।

यदि प्रत्येक चरण में उपर्युक्त इन्द्रवज्रा छन्द का प्रथम अक्षर लघु हो तो उपेन्द्रवज्रा नामक छन्द होता है। वस्तुतः इस छन्द के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और दो गुरु अक्षर होते हैं। लघु, गुरु, लघु, दो गुरु, लघु, लघु, गुरु, लघु तथा दो गुरु अक्षरों का विन्यास होने पर यह छन्द होता है। वृत्तरत्नाकर के अनुसार इसका लक्षण है—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।' इसके भी प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। उपर्युक्त लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

उपेन्द्रवज्रादिमणिच्छटाभिर्विभूषणानां छुरितं वपुस्ते।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम्॥

उपेन्द्र, सुरतरुतले मणिमण्डप में बैठे, गहनों की हीरा आदि मणियों की छवि से सुशोभित और गोपियों से घिरे हुए तुम्हारे शरीर का मैं स्मरण करता हूँ।

उपजाति—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम॥ ३॥

यदीयौ पादौ = जिस छन्द के चरण, अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजो — अनन्तरम् उदीरितयोः लक्ष्म भजतः तौ = पहले कहे गये (इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा) दो छन्दों के लक्षण से युक्त हों, वह उपजाति नामक छन्द होता है। उपर्युक्त लक्षण-श्लोक ही उदाहरण भी है—

ज	त	ज	ग ग	
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	=उपेन्द्रवज्रा
अनन्त	रोदीरि	तलक्ष्म	भाजौ	
त	त	ज	ग ग	
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	=इन्द्रवज्रा
पादौय	दीयावु	पजात	यस्ताः	

यह लक्षणश्लोक उपेन्द्रवज्रा तथा इन्द्रवज्रा का मिश्रण होने से उपजाति छन्द है। इसमें प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा और दूसरा चरण इन्द्रवज्रा छन्द का है। इसी प्रकार तीसरा चरण इन्द्रवज्रा और चौथा चरण उपेन्द्रवज्रा का है।

इत्थम् = इसी प्रकार, अन्यासु अपि जातिषु मिश्रितासु = अन्य दो छन्दों के मिश्रण से भी, इदम् एव नाम = यही उपजाति नामक छन्द होता है।

अन्य सजातीय छन्दों के मिश्रण से भी उपजाति छन्द बनता है। इस प्रकार यह छन्द अनेक प्रकार का होता है। अन्य उदाहरण :—

क्वचिन्मुरारेर्वदनारविन्दं संक्रान्तमालोक्य जले नवोढा।
व्यक्तं सलज्जा परिचुम्बितुं तत्तदर्थमेवाम्भसि निर्ममज्ज॥

किसी नयी विवाहिता युवती ने कृष्ण के मुख-कमल को जल में प्रतिबिम्बित देखकर लजाने के कारण स्पष्ट चुम्बन में असमर्थ होकर उसीलिए जल में डुबकी लगा ली।

इस श्लोक के प्रथम तीन चरणों में इन्द्रवज्रा छन्द है तथा चौथे चरण में उपेन्द्रवज्रा है। अतएव यहाँ उपजाति छन्द है।

मुखारविन्दैर्व्रजसुन्दरीणामामोदमत्युत्कटमुद्गिरद्भिः।
अहारि चित्तेन समं मुरारेर्हेमाम्बुजेभ्योऽपि मधुव्रतौघः॥

व्रज-सुन्दरियों ने अपने मुख-कमल की अति तीव्र गन्ध से कृष्ण के चित्त के साथ-साथ स्वर्णकमलों पर बैठे हुए भौंरों को भी आकृष्ट कर लिया।

इस श्लोक के पहले तथा तीसरे चरण में इन्द्रवज्रा छन्द है तथा दूसरे तथा चौथे चरण में उपेन्द्रवज्रा छन्द है। अतएव दोनों छन्दों के मिश्रण से यह उपजाति छन्द हुआ।

तोयेषु तस्याः प्रतिबिम्बितासु व्रजाङ्गनानां नयनावलीषु।
स्वबन्धुपङ्क्तिभ्रमतोऽतिमुग्धा गोष्ठीं शफर्यो रचयाम्बभूवुः॥

अति मुग्ध मछलियों ने उसके (यमुना) के जल में प्रतिबिम्बित व्रजवनिताओं की आँखों की पाँतों को अपनी बिरादरी का समझकर उनके साथ बैठकबाजी की।

इस श्लोक के पहले तथा चौथे चरण में इन्द्रवज्रा और दूसरे तथा तीसरे चरण में उपेन्द्रवज्रा छन्द है। अतएव दोनों छन्दों की मिलावट से यह उपजाति छन्द बना।

वनेषु कृत्वा सुरभिप्रचारं प्रकाममुग्धो मधुवासरेषु।
गायन् कलं क्रीडति पद्मिनीषु मधूनि पीत्वा मधुसूदनोऽसौ॥

अति मुग्ध मधुसूदन (कृष्ण और भौंरा) वासन्ती वनों में (जल में) गोचारण (वसन्त तथा सुगन्ध का प्रचार) कर तथा अधरों के अमृत का पान कर (पुष्परस का पान कर) सुन्दर गान करता हुआ पद्मिनी नायिकाओं (कमलिनियों) में विहार करता है।

इस श्लोक के पहले, दूसरे तथा चौथे चरण में इन्द्रवज्रा ओर तीसरे चरण में उपेन्द्रवज्रा छन्द है। अतएव यह उपजाति छन्द हुआ।

इसी प्रकार अन्य सजातीय छन्दों से भी उपजाति छन्द बनता है। उदाहरणार्थ :—

इत्थं रथाश्वेभनिषादिनां प्रगे गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः।
प्रस्थानकालक्षमवेशकल्पनाकृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम्॥

इस प्रकार सूर्योदय के बाद रथ, घोड़े तथा हाथियों पर बैठे हुए राजाओं के समूह ने तोरणों के बाहर जाकर यात्रा-हेतु उचित वेष की रचना में देर करते हुए कृष्ण की प्रतीक्षा की।

इस श्लोक के पहले तथा तीसरे चरण में इन्द्रवंशा और दूसरे तथा चौथे चरण में वंशस्थ छन्द है। अतएव यहाँ उपजाति छन्द हुआ। ध्यातव्य है कि इन्द्रवंशा का लक्षण है—'तच्चेन्द्रवंशा प्रथमेऽक्षरे गुरौ।' वंशस्थविल छन्द के लक्षण में जब प्रथम अक्षर गुरु होता है तब इन्द्रवंशा छन्द बनता है।

जगती, द्वादशाक्षरा वृत्ति

वंशस्थविल— ज त ज र

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ॥ ४ ॥

(यदि) जश्च तश्च, जतौ = जगण, तगण; जश्च रश्च, जरौ = जगण और रगण हों तो उसे वंशस्थविलम् वंशस्थविल, वदन्ति = कहते हैं।

यदि छन्द के प्रत्येक चरण के अक्षरविन्यास में जगण—लघु, गुरु, लघु; तगण—दो गुरु, एक लघु; जगण—लघु, गुरु, लघु तथा रगण—गुरु, लघु और गुरु अक्षर हों तो वह वंशस्थविल छन्द होता है। इसका प्रचलित नाम वंशस्थ है। इसके प्रत्येक चरण में बारह अक्षर तथा पूरे छन्द में अड़तालीस अक्षर होते हैं। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

विलासवंशस्थविलं मुखानिलैः प्रपूर्य यः पञ्चमरागमुद्गिरन्।
व्रजाङ्गनानामपि गानशालिनां जहार मानं स हरिः पुनातु नः ॥

जिसने विलास की वंशी के छेदों को मुख की हवा से भरकर पंचम राग को निकालते हुए व्रजवधुओं और बड़े-बड़े गायकों के अभिमान को दूर कर दिया, वह कृष्ण हमें पवित्र करे।

भुजङ्गप्रयात— य य य य

। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥ ५ ॥

चतुर्भिः = चार, यकारैः = यगण से युक्त, भुजङ्गप्रयातम् = भुजङ्गप्रयात नामक छन्द होता है।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में चार यगण—लघु, गुरु, गुरु; लघु, गुरु, गुरु; लघु, गुरु, गुरु; लघु, गुरु, गुरु अक्षर—होता है, उसका नाम भुजङ्गप्रयात है।

इसके प्रत्येक चरण में बारह और सम्पूर्ण छन्द में अड़तालीस अक्षर होते हैं। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय त्वमेतं ह्रदं जीवनं लिप्समानः।
मया क्लेशितः कालियेत्थं कुरु त्वं भुजङ्गप्रयातं द्रुतं सागराय॥

कालिय सर्प, तू इस प्रकार मुझसे क्लेश पाकर पत्नी, पुत्र, जाति और नौकरों के साथ जीवन (जीवन और जल) को चाहता हुआ अपने इस अगाध जल के कुण्ड को छोड़कर शीघ्र समुद्र में चला जा।

तोटक—

स स स स

। । S । । S । । S । । S

वद तोटकमब्धिसकारयुतम् ॥ ६ ॥

अब्धिसकारयुतम् = चार सगणों से युक्त, तोटकम् = तोटक (नामक छन्द) को, वद = कहो।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण—लघु, लघु, गुरु; लघु, लघु, गुरु; लघु, लघु, गुरु; लघु, लघु, गुरु अक्षर—रहता है; उसका नाम तोटक है। इसके प्रत्येक चरण में बारह और सम्पूर्ण छन्द में अड़तालीस अक्षर होते हैं। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

यमुनातटमच्युतकेलिकलालसदङ्घ्रिसरोरुहसङ्गरुचिम्।
मुदितोऽट कलेरपनेतुमघं यदि चेच्छसि जन्म निजं सफलम्॥

यदि कलिकाल के पापों को दूर करना चाहते हो और अपने जन्म को सफल बनाना चाहते हो तो कृष्ण की केलिकला में सुशोभित चरणकमलों के सम्पर्क से रुचिर यमुना-तीरे घूम।

द्रुतविलम्बित—

न भ भ र

। । । S । । S । । S । S

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ॥ ७ ॥

नश्च भश्च, नभौ = (यदि किसी छन्द के प्रत्येक चरण में) नगण, भगण;

भश्च, रश्च, भरौ = भगण और रगण हों (तो उसे) द्रुतविलम्बितम् = द्रुत-विलम्बित, आह = कहते हैं।

द्रुतविलम्बित छन्द का प्रत्येक चरण बारह अक्षरों का होता है और उसमें क्रमशः नगण—तीन लघु, भगण—एक गुरु, दो लघु; भगण—एक गुरु, दो लघु और रगण—गुरु, लघु तथा गुरु—होते हैं। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

तरणिजापुलिने नववल्लवी परिषदा सह केलिकुतूहलात्।
द्रुतविलम्बित चारुविहारिणं हरिमहं हृदयेन सदा वहे॥

यमुना के पुलिन पर नवीना गोपियों के साथ विहार की अभिलाषा से शीघ्र तथा मन्थर गति से युक्त कृष्ण को मैं सदा हृदय में धारण करता हूँ।

शर्करी, चतुर्दशाक्षरावृत्ति

वसन्ततिलका—

त　भ　ज　ज　ग ग

S S I S I I I S I I S I S S
ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः॥ ८॥

तश्च, भश्च, जश्च, तभजाः = तगण, भगण, जगण; जश्च गश्च, जगौ = जगण, गुरु; गः = गुरु (अक्षरविन्यासवाले छन्द को); वसन्ततिलकम् = वसन्त-तिलक; ज्ञेयम् = जानना चाहिये।

वसन्ततिलक छन्द का प्रत्येक चरण चौदह अक्षरों का होता है। सम्पूर्ण छन्द में कुल छप्पन अक्षर होते हैं। इसमें तगण—गुरु, गुरु, लघु; भगण—गुरु, लघु, लघु; जगण—लघु, गुरु, लघु; जगण—लघु, गुरु, लघु और दो गुरु अक्षर होते हैं। वृत्तरत्नाकर में इसका नाम वसन्ततिलका है। काश्यप इसे सिंहोन्नता अभिधान देते हैं। सैतव मुनि के अनुसार इस छन्द का नाम उद्धर्षिणी है। आचार्य राम इसे मधुमाधवी कहते हैं, पर वसन्ततिलका नाम अधिक प्रचलित है।

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः
सिंहोन्नतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन॥

उद्धर्षिणीति गदिता मुनिसैतवेन
रामेण सेयमुदिता मधुमाधवीति ॥

उपर्युक्त लक्षण इसका उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

फुल्लं वसन्ततिलकं तिलकं वनाल्या
लीलापरं पिककुलं कलमत्र रौति।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रि वातो
यातो हरिः स मथुरां विधिना हता स्मः ॥

वनराजि में वसन्त का तिलक तिलक का फूल फूल उठा है, लीला में तत्पर कोकिलों का कुल यहाँ कल-कूजन कर रहा है, सुमनों से सुगन्वित मलयगिरि का समीर सरसरा रहा है, वे हरि मथुरा चले गये, हम सबको तो विधि ने मार डाला।

अतिशर्करी, पञ्चदशाक्षरा वृत्ति

मालिनी—

न न म य य

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ ९ ॥

भोगिनश्च लोकाश्च भोगिलोकाः तैः, भोगिलोकैः = आठ तथा सात अक्षरों के बाद यति रहने पर; इयम् = यह, नश्च नश्च मश्च यश्च यश्च ननमययाः तैः युता, ननमययुता = नगण, नगण, मगण, यगण और यगण से युक्त; मालिनी = मालिनी छन्द होता है।

मालिनी छन्द का प्रत्येक चरण पन्द्रह अक्षरों का होता है। कुल मिलाकर इस छन्द में साठ अक्षर होते हैं। इसमें नगण—तीन लघु; नगण—तीन लघु; मगण—तीन गुरु; यगण—लघु और दो गुरु; यगण—लघु और दो गुरु अक्षरों का विन्यास होता है। ध्यातव्य है कि इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः आठ तथा सात अक्षरों पर विराम होता है। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

मृगमदकृतचर्चा पीतकौशेयवासा
रुचिरशिखिशिखण्डा बद्धधम्मिल्लपाशा।

अनृजुनिहितमंसे वंशमुत्क्वाणयन्ती
धृतमधुरिपुलीला मालिनी पातु राधा॥

कस्तूरी का अङ्गराग लगानेवाली, रेशमी पीताम्बर पहननेवाली, मोर के सुन्दर पंखों से केश-समूह को बाँधनेवाली, माला धारण करनेवाली तथा अपने कन्धे पर तिरछी रखी हुई वंशी को बजाती हुई राधिका रक्षा करे।

अत्यष्टि, सप्तदशाक्षरा वृत्ति

शिखरिणी—

य म न स भ ल ग

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी॥ १० ॥

रसैः = छ (अक्षरों); रुद्रैः = ग्यारह (अक्षरों पर); छिन्ना = टूटी हुई, यतिवाली, विरामवाली; यश्च मश्च नश्च सश्च भश्च लश्च, यमनसभलाः = यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु; गः = (और) एक गुरु (से युक्त); शिखरिणी = शिखरिणी (छन्द) होती है।

शिखरिणी छन्द के प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षर होते हैं। सम्पूर्ण छन्द अड़सठ अक्षरों से युक्त होता है। इसमें यगण—लघु, गुरु, गुरु; मगण—तीन गुरु; नगण—तीन लघु; सगण—दो लघु, एक गुरु; भगण—एक गुरु, दो लघु; एक लघु और एक गुरु अक्षरों का विन्यास होता है। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

करादस्य भ्रष्टे ननु शिखरिणी दृश्यति शिशो-
विलीनाः स्मः सत्यं नियतमवधेयं तदखिलैः।
इति त्रस्यद् गोपानुचितनिभृतालापजनितं
स्मितं बिभ्रद्देवो जगदवतु गोवर्धनधरः॥

'इस छोटे बालक के हाथ से शिखरोंवाले इस गिरि के गिर जाने पर निश्चय ही हम सब विलीन हो जायेंगे, अतएव हम सबको ध्यान देना चाहिए'—इस प्रकार डरे हुए गोपालों का अनुचित गुपचुप संलाप से उत्पन्न मुस्कान को धारण करनेवाला गोवर्धनधारी देव संसार की रक्षा करे।

मन्दाक्रान्ता—

म भ न त त ग ग

S S S S I I I I I S S I S S I S S

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ॥ ११ ॥

अम्बुधिश्च रसश्च नगाश्च तैः अम्बुधिरसनगैः = चार, छ और सात अक्षरों के बाद यति होने पर; (यदि) मः = मगण, भश्च नश्च भनौ = भगण, नगण, तश्च तश्च तौ = दो तगण, गयुग्मम् = दो गुरु हों तो, मन्दाक्रान्ता = मन्दाक्रान्ता (छन्द होता है) ।

मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षर होते हैं। सम्पूर्ण छन्द में कुल मिलाकर अड़सठ अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में तीन स्थानों पर यति होती है—क्रमशः चार, छ तथा आठ अक्षरों के बाद। मन्दाक्रान्ता में मगण—तीन गुरु; भगण—एक गुरु, दो लघु; नगण—तीन लघु; तगण—दो गुरु, एक लघु; तगण—दो गुरु, एक लघु और अन्त में दो गुरु अक्षरों का विन्यास होता है। उपर्युक्त लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

प्रेमालापैः प्रियवितरणैः प्रीणितालिङ्गनाद्यै-
मन्दाक्रान्ता तदनु नियतं वश्यतामेति बाला।
एवं शिक्षावचनसुधया राधिकायाः सखीनां
प्रीतः पायात् स्मितसुवदनो देवकीनन्दनो नः ॥

'प्रेमपगी बातचीत, प्रिय वस्तुओं का दान तथा आलिंगन आदि से प्रसन्न की गयी फिर धीरे-धीरे आक्रान्त बाला निश्चय वशंवद हो जाती है'—राधिका की सखियों के इस प्रकार की सीखभरी वचन-सुधा से प्रसन्न एवं मुस्कान से सुन्दर मुखवाला देवकी का बेटा हमारी रक्षा करे।

अतिधृति, ऊनविंशत्यक्षरा वृत्ति

शार्दूलविक्रीडित—

म स ज स त त ग

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १२ ॥

यदि = यदि, सूर्यश्च, अश्वाश्च, सूर्याश्वैः = बारह तथा सात (अक्षरों के अनन्तर यति हो और); मः = मगण; सश्च जश्च, सजौ = सगण, जगण; सश्च तश्च तश्च गश्च, सततगाः = सगण, दो तगण और एक गुरु (वाला अक्षरविन्यास हो तो) शार्दूलविक्रीडितम् = शार्दूलविक्रीडित (नामक छन्द होता है)।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर होते हैं। सम्पूर्ण छन्द में कुल मिलाकर छिहत्तर अक्षर हैं। इसके प्रत्येक पाद में बारह तथा सात अक्षरों के बाद यति होती है। मगण—तीन गुरु; सगण—दो लघु, एक गुरु; जगण—लघु, गुरु, लघु; सगण—दो लघु, एक गुरु; दो तगण—दो गुरु, एक लघु; दो गुरु, एक लघु और एक गुरु अक्षरों का विन्यास शार्दूलविक्रीडित है। उपर्युक्त लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

गोविन्दं प्रणमोत्तमाङ्ग रसने तं घोषयाहर्निशं
पाणी पूजय तं मनः स्मर पदे तस्यालयं गच्छतम्।
एवं चेत् कुरुथाखिलं मम हितं शीर्षादयस्तद्ध्रुवं
न प्रेक्षे भवतां कृते भवमहाशार्दूलविक्रीडितम्॥

सिर, तुम गोविन्द को प्रणाम करो; जीभ, तुम दिन-रात उसीको घोखो; हाथ, तुम उसकी पूजा करो; मन, तुम उसका स्मरण करो; पैर, तुम उसके आलय में जाओ। सिर आदि, यदि तुम इस प्रकार मेरी भलाई करो तो तुम्हारे कारण मैं संसाररूपी इस महाव्याघ्र को कुछ न मानूँ।

प्रकृति, एकविंशत्यक्षरा वृत्ति

स्रग्धरा—

म र भ न य य य

ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।। ।।। ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्॥ १३॥

मश्च र् च भ् च नश्च, म्रभ्नाः, तैः म्रभ्नैः = मगण, रगण, भगण, नगण; यानां त्रयेण = यगण का तीन (तीन यगण) से युक्त; त्रिमुनियतियुता = तीन बार सात अक्षरों के बाद यतिवाली; इयम् = यह, स्रग्धरा (छन्द); कीर्तिता = कही गयी है।

स्रग्धरा छन्द के प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर होते हैं। सम्पूर्ण छन्द में चौरासी अक्षरों का विन्यास किया जाता है। मगण—तीन गुरु; रगण—गुरु, लघु, गुरु; भगण—गुरु; दो लघु; नगण—तीन लघु; यगण—एक लघु, दो गुरु; यगण—एक लघु, दो गुरु; यगण—एक लघु, दो गुरु अक्षर स्रग्धरा में विन्यस्त किये जाते हैं। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

व्याकोषेन्दीवराभा कनककषलसत्पीतवासाः सुहासा
बर्हैरुच्चन्द्रकान्तैर्वलयितचिकुरा चारुकर्णावतंसा।
अंसव्यासक्तवंशीध्वनिसुखितजगद् वल्लवीभिर्लसन्ती
मूर्तिर्गोपस्य विष्णोरवतु जगति नः स्रग्धरा हारिहारा॥

खिले हुए नीलकमल की द्युति-सी प्रभासित, सुवर्णरेखा सरीखे पीले वस्त्र को धारण करनेवाली, हास से विलसित, चन्द्रक से सजे मोर-पंखों से बँधे केशों से सुसज्जित; सुन्दर कनफूलों से सुशोभित, कन्धे पर लटकती हुई वंशी की ध्वनि विश्व को आमोदित करनेवाली, गोपियों से घिरी हुई, माला पहननेवाली, मनोहारी हार को धारण करनेवाली विष्णु की गोपमूर्ति संसार में हमारी रक्षा करे।

इति द्वितीयः स्तबकः।

●

तृतीयः स्तबकः

अर्द्धसमवृत्त

पुष्पिताग्रा—

न न र य न ज ज र ग

। । । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । । । । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥ १४॥

अयुजि = विषम चरणों में; नयुगं च रेफश्च, नयुगरेफौ तस्मात् नयुगरेफतः = दो नगण और एक रगण; (और) युजि च = सम चरणों में; नश्च जश्च, नजौ = नगण, जगण; जश्च रश्च गश्च, जरगाः = जगण, रगण और एक गुरु (हो वह); पुष्पिताग्रा नामक छन्द होता है।

पुष्पिताग्रा छन्द के पहले और तीसरे चरण में बारह अक्षर होते हैं। इस प्रकार प्रथम तथा तृतीय चरण में दो नगण—छ लघु, रगण--गुरु, लघु, गुरु; यगण—एक लघु, दो गुरु अक्षर संयोजित किये जाते हैं। दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह अक्षर होते हैं। नगण—तीन लघु, जगण—लघु, गुरु, लघु; जगण—लघु, गुरु, लघु; रगण—गुरु, लघु, गुरु और एक गुरु अक्षरों का संघटन सम चरणों में किया जाता है। यह लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

करकिसलयशोभया विभान्ती कुचफलभारविनम्रदेहयष्टिः।
स्मितरुचिरविलासपुष्पिताग्रा व्रजयुवतिव्रततिर्हरेर्मुदेऽभूत् ॥

कररूपी किसलयों की शोभा से सुशोभित, कुचरूपी फलों के भार से झुकी हुई देहवाली, मुस्कानरूपी सुन्दर विलास के फूलों से खिली हुई अग्रभागवाली व्रजयुवतीरूप लता कृष्ण की आनन्ददायिका हो गयी।

सुन्दरी—

स स ज ग स भ र ल ग

। । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः, सभरा लगौ यदि सुन्दरी तदा ॥ ६ ॥

यदि = यदि, अयुजोः = विषम चरणों में—प्रथम तथा तृतीय चरण में, सश्च सश्च सौ = दो सगण, जश्च गश्च जगौ = जगण तथा एक गुरु (अक्षर हों); (तथा) युजोः = सम चरणों में—द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में, सश्च भश्च रश्च सभराः = सगण, भगण, रगण, ल् च गश्च लगौ = लघु और गुरु (अक्षर हों), तदा = तब, सुन्दरी = सुन्दरी (नामक छन्द होता है)। सुन्दरी छन्द के पहले तथा तीसरे चरण में दस अक्षर होते हैं। इस प्रकार प्रथम तथा तृतीय चरण में दो सगण—दो लघु, एक गुरु तथा दो लघु, एक गुरु अक्षर, एक जगण—लघु, गुरु, लघु और एक गुरु अक्षर संयोजित किये जाते हैं। दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। एक सगण—दो लघु, एक गुरु; एक भगण—एक गुरु, दो लघु; एक रगण—गुरु, लघु, गुरु तथा अन्त में एक लघु और एक गुरु अक्षरों का विन्यास किया जाता है।

इस छन्द का दूसरा नाम वियोगिनी भी है। यह लक्षण उदाहरण भी है।

अन्य उदाहरण :—

यदवोचत वीक्ष्य मानिनी परितः स्नेहमयेन चक्षुषा।
अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं तद्विदधीत विस्मयम्॥

मानिनी (द्रौपदी) ने नेहपगी आँखों से चहुँओर देखकर जो बात कही है, बृहस्पति के द्वारा भी कठिनाई से कही जानेवाली वह बात विस्मय उत्पन्न करती है अथवा (किसीके द्वारा कठिनाई से कही जानेवाली वह बात बृहस्पति को विस्मय में डालती है)।

इति तृतीयः स्तबकः।

●

चतुर्थः स्तबकः

विषम वृत्त

अनुष्टुप्—

भवत्यर्धसमं वक्त्रं विषमं च कदाचन।
तयोर्द्वयोरुपान्तेऽत्र छन्दस्तदधुनोच्यते॥ १५॥

वक्त्रम् = वक्त्र (नामक छन्द); कदाचन = कभी; अर्धसमम् = अर्धसम; विषमम् = (और कभी) विषम; भवति = होता है। तयोः द्वयोः = उन दोनों के (अर्धसम अथवा विषम वक्त्र के); उपान्ते = अन्तिम अक्षर से पूर्ववाले अक्षर में; छन्दः = छन्द का नियम लागू होता है; तत् = वह; अधुना = अब; उच्यते = कहा जाता है।

यह वक्त्र नामक वृत्त ही कभी अर्धसम और कभी विषम होता है। अतएव इन दोनों प्रकार के वक्त्र छन्दों में नियम अन्तिम वर्ण से पूर्व वर्ण में विहित है। छन्द का नियम अन्तिम वर्ण के पूर्ववर्ती वर्ण में ही लागू होता है, अन्यत्र नहीं।

य म ग य

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ

वक्त्रं युग्भ्यां मगौ स्याता, मब्धेर्योऽनुष्टुभि ख्यातम्।

अनुष्टुभिः = अनुष्टुप् नामक छन्द में (जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं); अब्धेः = चौथे वर्ण के पश्चात्; यः = यगण हो (तथा), युग्भ्याम् =

दूसरे, चौथे चरण में; मश्च गश्च, मगौ = मगण और गुरु; स्याताम् = हों तो वक्त्रम् = वक्त्र नामक छन्द होता है।

य ज

ISS ISI

यजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

यजोः = दूसरे तथा चौथे पाद में; चतुर्थतः = चौथे वर्ण के पश्चात्; जेन = जगण (होने पर); पथ्यावक्त्रम् = पथ्यावक्त्र (नामक छन्द); प्रकीर्तितम् = कहा गया है।

दूसरे तथा चौथे चरण में यदि चौथे वर्ण के अनन्तर जगण—लघु, गुरु, लघु—हो तो पथ्यावक्त्र छन्द की संघटना हो जाती है। लक्षण ही उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

रासकेलिसतृष्णस्य कृष्णस्य मधुवासरे।
आसीद् गोपमृगाक्षीणां पथ्या वक्त्रमधुस्रुतिः ॥

रास में केलि करने के लोभी कृष्ण के लिए वासन्ती दिनों में गोपों की मृगनयनियों के मुख से बहनेवाली मधु की धारा पथ्य हो गयी।

अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं। सम्पूर्ण छन्द में कुल बत्तीस अक्षरों का संयोजन किया जाता है। अनुष्टुप् में यदि चौथे वर्ण के बाद यगण—एक लघु, दो गुरु हो तथा दूसरे और चौथे चरण में मगण—तीन गुरु तथा एक गुरु हो तो वक्त्र नामक छन्द बनता है।

ल लगल

I ISI

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।

ल लगल

I ISI

गुरु षष्ठं च जानीयात् शेषेष्वनियमो मतः ॥

सर्वत्र = सभी चरणों में; पञ्चमम् = पाँचवाँ अक्षर; लघु = लघु हो;

द्विचतुर्थयोः = दूसरे तथा चौथे चरण में; सप्तमम् = सातवाँ अक्षर; लघु = लघु हो; षष्ठं च = और छठा अक्षर; गुरु = गुरु; जानीयात् = जानना चाहिए; शेषेषु = शेष अक्षरों में; अनियमः मतः = कोई नियम नहीं है।

उपर्युक्त वक्त्र नामक छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ अक्षर जहाँ लघु हो तथा दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ लघु तथा छठा गुरु हो वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है। शेष वर्णों के विषय में कोई नियम नहीं है।

प्रयोगे प्रायिकं प्राहुः केऽप्येतद्वृत्तलक्षणम्।
लोकेऽनुष्टुबिति ख्यातं तस्याष्टाक्षरता मता ॥

केऽपि = कुछ आचार्य; एतद्वृत्तलक्षणम् = वृत्त के इस लक्षण को; प्रयोगे = प्रयोग में; प्रायिकं प्राहुः = प्रायिक कहते हैं। तस्य = उस अनुष्टुप् में; अष्टाक्षरता = आठ अक्षर होना ही (प्रत्येक चरण में); मता = विद्वानों को मान्य है। लोके = लोक में (यह छन्द); अनुष्टुप् इति = अनुष्टुप् इस नाम से, ख्यातम् = प्रसिद्ध है।

कुछ आचार्य उपर्युक्त लक्षण को नहीं स्वीकारते, उनके अनुसार अनुष्टुप् के प्रत्येक चरण में आठ अक्षरों का होना ही पर्याप्त है। छन्दोमंजरीकार जिसे वक्त्र कहते हैं; वह संसार में अनुष्टुप् नाम से ही प्रसिद्ध है। उपर्युक्त सभी श्लोक अनुष्टुप् के उदाहरण हैं। अन्य उदाहरण :—

वक्त्राम्भोजं सदा स्मेरं चक्षुर्नीलोत्पलं फुल्लम्।
वल्लवीनां मुरारातेश्चेतोभृङ्गं जहारोच्चैः ॥

गोपियों के सदा मुस्कराते हुए मुखकमल तथा विकसित नीलकमल-सी आँखों ने मुरारि (कृष्ण) के चित्तभ्रमर को अपनी ओर खूब खींचा।

इति चतुर्थः स्तबकः।

पञ्चमः स्तबकः

मात्रावृत्त

आर्या—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ग

ऽ ऽ ऽऽ। । ऽ ऽऽ ऽ । । । ऽ। । । ऽ ऽ

लक्ष्मैतत् सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ॥ १६ ॥

६

।

षष्ठो जश्च नलघु वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः ।

षष्ठे द्वितीयलात् परके न्ले मुखलाश्च सयतिपदनियमः ॥

६

।

चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः ॥

गेन गुरुणा उपेताः, गोपेताः =(अन्त में) गुरु से युक्त; सप्तगणाः = सात गण (आर्या छन्द का); एतत् लक्ष्म = यह लक्षण है । इह = यहाँ (आर्या छन्द में); विषमे = विषम में, विषम चरणों में—प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम गणों में; जः = जगण नहीं होता । आर्यायाः = आर्या छन्द के; प्रथमे अर्धे = प्रथम अर्ध भाग में; पूर्वार्ध में; षष्ठः = छठा, जश्च = जगण; नलघु = नगण के साथ एक लघु अक्षर; नियतम् = नियत है, निश्चित है । षष्ठे = छठे गण में (चारों लघु वर्ण होने पर); न्ले = नगण और लघु होने पर; द्वितीयलात् = दूसरे लघु से पूर्व; परके = सातवें गण में (चारों लघु वर्ण होने पर); मुखलात् = प्रथम लघु से पूर्व; सयतिपदनियमः = यति के साथ पद का नियम है । चरमेऽर्धे = उत्तरार्ध में; पञ्चमके = पाँचवें गण में (चारों लघु वर्ण होने पर प्रथम लघु से पूर्व में यति होती है); तस्माद् इह = इसलिए यहाँ; षष्ठः = छठा गण; लः = लघु वर्णवाला होता है ।

आर्या छन्द मात्रिक है, अतएव सत्तावन मात्राएँ होती हैं। तीस मात्राएँ प्रथम आधे में तथा सत्ताईस दूसरे आधे भाग में नियत हैं। इस प्रकार आर्या छन्द के दो भाग माने जायेंगे। कुछ लोगों के अनुसार यह चार भागोंवाला छन्द है। यह मात्रिक छन्द है अतएव यहाँ गण की गणना मात्रा के अनुसार होती है। प्रत्येक गण में चार मात्राएँ होती हैं। गण चार प्रकार के हैं—दो गुरु—ऽ ऽ; चार लघु— । । । ।; दो लघु, एक गुरु—। । ऽ (तथा एक गुरु—ऽ)।

आर्या छन्द के पहले, दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें चरण में जगण नहीं होता। अन्तिम वर्ण को गुरु होना चाहिये। इसमें सात गण होते हैं। छठे गण का जगण अथवा नगण के साथ एक लघु होना आवश्यक है।

छठा गण जब चार लघु वर्णवाला होता है, तब यति दूसरे लघु के पहले और सातवें गण में चारों लघु वर्ण होने पर प्रथम लघु से पहले होती है। उत्तरार्ध में छठा गण लघु वर्णोंवाला होने पर तथा पाँचवें गण में लघु वर्ण रहने पर प्रथम लघु से पहले यति का विधान है।

लक्षण उदाहरण भी है। अन्य उदाहरण :—

कृष्णः शिशुः सुतो मे वल्ल वकुलटाभिराहृतो न गृहे।
क्षणमपि वसत्यसाविति जगाद गोष्ठ्यां यशोदार्या॥

'मेरा बेटा कन्हैया बच्चा है, कुलटा गोपियाँ उसे बहका ले जाती हैं, घर में वह छनभर नहीं रहता'—इस प्रकार आर्या यशोदा ने गोष्ठी में कहा।

वृन्दावने सलीलं वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः।
स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः॥

वृन्दावन में लीलालसे सुन्दर तरु के तने पर शरीर को टिकाये हुए, हँसते मुख से वंशी चिपकाये हुए कृष्ण यदि मन में हों तो स्वर्ग क्या है ?

इति पञ्चमः स्तबकः।

॥ छन्दोमञ्जरी-सुधा समाप्त॥

मू